चौथी दुनिया

हिंदी का पहला साप्ताहिक अखबार

www.chauthiduniya.com

मूल्य 5 रुपये

दिल्ली, 21 जून–27 जून 2010

मुसलमान ही नहीं, प्रजातंत्र भी ख़तरे में है

पेज 3

भरोसे का हलफ़नामा

पेज 4

ओ गंगा बहती हो क्यों

पेज 7

साई की महिमा

पेज 12

देश के लोगों पर गोली नहीं चलाएंगे

प्रभात रंजन दीन

भारत की सेना ने भारत की सरकार से सवाल पूछे हैं, सवाल बुनियादी हैं और पहली बार पूछे गए हैं. भारत सरकार इन सवालों के दायरे में उलझ गई है, या कहें कि घबरा गई है. इन सवालों को सरकार के सामने उठा सेना ने साफ संकेत दिया है कि नक्सल विरोधी अभियान के नाम पर अपने ही देश के लोगों पर गोली चलाना उसे पसंद नहीं है. सेना की इच्छा के विरुद्ध यदि केंद्र सरकार फ़ैसला करती है तो सेना का आकलन है कि भीषण, त्रासदीपूर्ण दुर्घटनाओं की संख्या बढ़ जाएगी.

शनिवार पांच जून को रक्षा मंत्री ए के एंटोनी लखनऊ इसलिए गए थे कि वह मध्य कमान मुख्यालय के कमांडर समेत शीर्ष सैन्य अधिकारियों से नक्सलियों के ख़िलाफ़ सीधी कार्रवाई में सेना उतारे जाने के मामले में जायज़ा ले सकें. नक्सली गतिविधियों से प्रभावित अधिकतर राज्य मध्य कमान के अधिकार क्षेत्र में ही आते हैं. लखनऊ जाने का बहाना बनाया गया लखनऊ छावनी के संजोग छेत्री विहार में फौजियों के लिए बनी रिहाइशी कॉलोनी के उद्घाटन का. फिर साथ में थल सेनाध्यक्ष जनरल वी के सिंह को ले जाने की क्या ज़रूरत थी? जबकि तथ्य यह है कि मैरेड अकोमडेशन प्रोजेक्ट (मैप) के तहत यह कॉलोनी पहले ही बन गई थी और पिछले दो महीने से सेना के जूनियर कमीशंड अफसरों और अन्य रैंकर्स के परिवार बाक़ायदा अलॉटमेंट पाकर उसमें रह भी रहे थे.

दरअसल रक्षा मंत्री और थल सेनाध्यक्ष की यात्रा का लक्ष्य कुछ और ही था. मध्य कमान के अधिकारी भी अलर्ट थे. मध्य कमान मुख्यालय के सूर्या ऑडिटोरियम में रक्षा मंत्री और सेनाध्यक्ष के साथ हुई बैठक में मध्य कमान के जनरल अफसर कमांडिंग इन चीफ (जीओसी इन सी) लेफ्टिनेंट जनरल विजय कुमार अहलूवालिया, मध्य कमान के चीफ ऑफ स्टाफ गौतम बनर्जी, सब एरिया कमांडर मेजर जनरल वी एम कालिया एवं सैन्य महकमों के प्रमुख समेत वे सभी शीर्ष अधिकारी मौजूद थे, जिनके कंधे पर मध्य कमान के विस्तृत सैन्य क्षेत्र की ज़िम्मेदारी है. यदि केंद्र सरकार नक्सलियों के ख़िलाफ़ सेना उतारती है तो इनके नेतृत्व में ही एंटी नक्सल ऑपरेशन चलाया जाएगा. बैठक में उठाए गए मुद्दों से जो दर्जन भर सवाल सामने आए, उनमें केवल रक्षा मंत्री ही नहीं, पूरी केंद्र सरकार फंस गई है. उसे कोई जवाब नहीं सूझ रहा.

देश के रक्षा मंत्री ए के एंटोनी सेना का ग्रासरूट मूड भांपने गए थे और उनके सामने सेना का रुख़ साफ तौर पर सामने आया कि सेना अपने ही देश के लोगों पर गोली चलाने के लिए तैयार नहीं है. सेना का मानना है कि इसमें बहुत सी गुत्थियां हैं. नक्सल समस्या लॉ एंड ऑर्डर से जुड़ी समस्या है, लिहाज़ा उसका निबटारा सिविल पुलिस और प्रशासन को ही करना चाहिए. सेना के शीर्ष अधिकारियों की खुली असहमति के बाद रक्षा मंत्रालय और केंद्र सरकार को समझ में आ जाना चाहिए कि एंटी नक्सल ऑपरेशन में सेना को उतारना कितना संवेदनशील और जटिल है. नक्सल समस्या से निबटने के लिए मध्य कमान की तरफ़ से जो विस्तृत रिपोर्ट रक्षा मंत्रालय को भेजी गई थी, उससे ही सेना का रुख़ साफ था. यह रुख़ सैन्य कमांडरों के सम्मेलन में भी मुखर हुआ था, पर एंटोनी मध्य कमान जाकर अपनी नज़रों से हालात देखना चाहते थे. रक्षा मंत्री और सेनाध्यक्ष के सामने खड़े हुए इन सवालों का जवाब तलाशने की जद्दोजहद में अब सुरक्षा मामलों की कैबिनेट कमेटी लगी हुई है.

देश की इंटरनल सिक्युरिटी को लेकर गृह मंत्रालय की लापरवाही किस तरह उजागर हुई, उसकी बानगी देखिए. जब रक्षा मंत्री को यह बताया गया कि नक्सल प्रभावित राज्यों में सिविल पुलिस पूरी तरह फेल हो चुकी है और बिहार, झारखंड, छत्तीसगढ़ और उड़ीसा के साथ-साथ उत्तर प्रदेश, उत्तराखंड और मध्य प्रदेश की सरकारें मध्य कमान मुख्यालय के समक्ष त्राहिमाम बोल चुकी हैं, तो यह सूचना रक्षा मंत्री के लिए चौंकाने वाली थी. राज्य सरकारों के त्राहिमाम और उनके औपचारिक आग्रह के बाद ही सेंट्रल कमांड ने इन राज्यों की सशस्त्र पुलिस वाहिनियों और इंडिया रिजर्व बटालियनों को नक्सल-आतंकवाद से लड़ने का विशेष प्रशिक्षण दिया. सेंट्रल कमांड के विभिन्न रेजिमेंटल सेंटरों में इन राज्यों की पुलिस को विशेष प्रशिक्षण दिया गया. इसके अलावा इन्हें इंप्रूवाइज़्ड एक्सप्लोसिव डिवाइसेज़ से निबटने के बारे में भी विशेष ट्रेनिंग दी गई.

नक्सल प्रभावित राज्यों में मध्य कमान की तरफ़ से हथियारों की मरम्मत और नर्सिंग की विशेष ट्रेनिंग दिए जाने का काम अभी भी जारी है. अब तक 45 हज़ार से अधिक (46,343) पुलिसकर्मियों को नक्सल वारफेयर की ट्रेनिंग दी जा चुकी है. इसमें उक्त राज्यों की पुलिस की 200 बटालियनें और अर्ध सैनिक बल की 25 बटालियनें शामिल हैं. लेकिन फिर भी नतीजा ढाक के तीन पात है. स्थानीय सिविल पुलिस और प्रशासन भ्रष्टाचार व उत्पीड़न में अब भी लगा है. लोगों में फैली नफ़रत की वजह से नक्सली संगठनों को विस्तार करने का मौक़ा और स्थानीय लोगों का समर्थन, दोनों मिल रहा है.

रक्षा मंत्री ने लखनऊ दौरे के दौरान अपना मुंह तो नहीं खोला, लेकिन सच यह है कि कमांड के अधिकारियों ने उनके समक्ष मुंह खोला और रक्षा मंत्री ने चुपचाप इस कठोर यथार्थ का एहसास किया. एंटोनी ने सार्वजनिक तौर पर इतना ही कहा कि यह मामला अत्यंत संवेदनशील है और नक्सलियों के ख़िलाफ़ सेना उतारने का फ़ैसला काफी सोच समझ कर ही किया जाएगा. आपको यह बता दें कि मध्य कमान के कमांडर लेफ्टिनेंट जनरल विजय कुमार अहलूवालिया की ओर से सौंपी गई रिपोर्ट को पिछले महीने 17 मई से 21 मई तक चले कमांडर्स कॉन्फ्रेंस में विचार के लिए रखा गया था और उस पर पांच दिनों तक ख़ूब बहस भी हुई, लेकिन उसके बाद सरकार ने उस पर चुप्पी साध ली और इस मसले पर सरकार का कोई आधिकारिक बयान सामने नहीं आया. उस रिपोर्ट में, और सैन्य कमांडरों की बहस में भी थल सेना के नक्सल ऑपरेशंस में इस्तेमाल किए जाने पर विरोध जताया गया. हालांकि इसके बावजूद वायुसेना के चार एमआई-17 हेलीकॉप्टर एंटी नक्सल ऑपरेशन में गश्त

(शेष पृष्ठ 2 पर)

सेना के 13 सवाल

1. क्या देश की सिविल पुलिस और प्रशासनिक व्यवस्था फेल हो गई है?
2. किस क़ानूनी आधार पर देश के अंदरूनी लॉ एंड ऑर्डर से जुड़े मामले में सेना को उतारा जाएगा?
3. सेना उतारने के पहले क्या केंद्र सरकार देश के सभी नक्सल प्रभावित राज्यों में आर्म्ड फोर्सेज़ स्पेशल पावर ऐक्ट लागू करने की घोषणा करेगी? कश्मीर और पूर्वोत्तर राज्यों से स्पेशल पावर ऐक्ट को समाप्त किए जाने सम्बन्धी राजनीतिक बयानबाज़ियों के बरक्स फिर से यह ऐक्ट कैसे लागू किया जाएगा और इस ऐक्ट के लागू किए बगैर सेना किस क़ानूनी अधिकार के साथ मैदान में उतरेगी?
4. अंतरराष्ट्रीय सीमा की सुरक्षा के साथ-साथ कश्मीर और पूर्वोत्तर राज्यों में आतंकवाद से जूझ रही सेना को नक्सल विरोधी अभियान में उतारा जाना क्या उचित है? तब जबकि सेना में अफसरों की पहले से भारी किल्लत हो?
5. आतंकवाद प्रभावित क्षेत्रों में सेना उतारने के बाद मानवाधिकार उल्लंघन के नाम पर सेना के अफसरों और जवानों को हत्या व अपराध के संज्ञेय मामले झेलने के लिए अकेला क्यों छोड़ दिया जाता है?
6. सेना के अधिकारी व फौजी, आर्मी ऐक्ट और इंडियन पेनल कोड के दो क़ानूनों के बीच क्यों पीसे जाते हैं?
7. नक्सल विरोधी अभियान में सेना के उतारे जाने के बाद एनजीओ और मानवाधिकार संगठनों के तूल और पचड़े से सेना को बचाने के क्या उपाय किए जा रहे हैं?
8. स्थानीय सिविल पुलिस की तरह सेना को भी स्थानीय आबादी की घृणा का केंद्र बनने के लिए क्यों छोड़ा जा रहा है? जबकि सिविल पुलिस व प्रशासन, भ्रष्टाचार और अत्याचार में आकंठ डूबे रहने के कारण जनता की नफ़रत के केंद्र में हैं. इसी नफ़रत की वजह से नक्सली संगठनों को फलने-फूलने का मौक़ा मिला है.
9. स्थानीय प्रशासन और सिविल पुलिस काम नहीं कर रही और पूरी तरह फेल साबित हो चुकी है, तो उसका काम करने के लिए भी सेना को उतारा जाना क्या सैन्य आचार का बेजा इस्तेमाल नहीं है?
10. अभियान में सेना को उतारने के बाद कार्रवाइयों को बीच में ही रोक कर आतंकी या नक्सली संगठनों से वार्ता करने का ग़ैर ज़िम्मेदार राजनीतिक रवैया अख्तियार नहीं करने की भविष्य की क्या गारंटी है?
11. सिविल आबादी से दूरी के कारण सेना के प्रति क़ायम रहने वाला अपरिचित भय का माहौल ऐसे अभियानों में सेना के उतारे जाने के बाद ख़त्म हो जाएगा. उसके बाद की भयावह अराजक स्थिति से निबटने के केंद्र के पास क्या उपाय हैं?
12. आतंकियों की पहचान पर सवाल खड़ा कर सेना को निर्दोष की हत्या करने के अनगिनत आपराधिक मामलों में उलझा दिया गया है. ऐसे में आम आदिवासियों या आम लोगों में कौन नक्सली है, इसकी पहचान कौन करेगा? क्या इसके लिए मिलिट्री इंटेलिजेंस को भी अपनी प्राथमिकताएं छोड़ कर नक्सल विरोधी अभियान में लगाया जाएगा?
13. काम के अत्यधिक बोझ और तनाव से सेना में फ्रस्ट्रेशन बढ़ेगा, विद्रोह बढ़ेगा और आपस में गोलीबारी की घटनाएं बढ़ेंगी... इससे पार पाने के उपाय?

यह इतिहास का एक पन्ना है

तत्कालीन प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी ने भी अक्टूबर 1969 में नक्सलियों के ख़िलाफ सेना उतारने का फरमान जारी किया था. तब देश के सेनाध्यक्ष जनरल सैम मानेक शॉ हुआ करते थे. पश्चिम बंगाल तब नक्सलबाड़ी आंदोलन में जल रहा था. उस समय सेना की पूर्वी कमान के जीओसी इन सी लेफ्टिनेंट जनरल जेएफआर जैकब थे. सेना के ही दस्तावेज़ बताते हैं कि प्रधानमंत्री के आदेश पर थल सेनाध्यक्ष जनरल मानेक शॉ और सचिव गोविंद नारायण ने जब नक्सलियों के ख़िलाफ़ सेना उतारने के लिए पूर्वी कमान के कमांडर से कहा तो उन्होंने इस आदेश को मानने से यह कहते हुए इन्कार कर दिया कि यह सेना का काम नहीं है. इससे सिविल पुलिस को निबटना चाहिए. मानेक शॉ ने लेफ्टिनेंट जनरल जैकब से कहा कि सिविल पुलिस पूरी तरह नाकाम हो चुकी है. इस पर जैकब ने मानेक शॉ से सेना के इस्तेमाल का लिखित आदेश जारी करने को कहा. लिखित आदेश देने से जनरल मानेक शॉ ने मना कर दिया. सरकार के दबाव पर नक्सलियों के ख़िलाफ़ सेना उतारी गई. लेकिन उसका नतीजा क्या निकला? आज नक्सली संगठन दोगुनी ताक़त से उभर कर सामने आ गए.

लेफ्टिनेंट जनरल वीके अहलूवालिया | थल सेनाध्यक्ष जनरल वीके सिंह | लेफ्टिनेंट जनरल गौतम बनर्जी

लाहिड़ी के कार्यकाल में विस्तार से प्रधानमंत्री कार्यालय में सचिव एम एन प्रसाद को मनीला भेजे जाने की अफवाहों पर भी विराम लग गया है.

दिल्ली का बाबू

दिलीप चेरियन

सरकारी फैसलों पर बाजार का असर

केंद्र सरकार के कामकाज पर नजर रखने वालों की बातों का भरोसा करें तो कुछ खास मंत्रालयों के नौकरशाहों एवं शेयर बाजार के बीच एक नया और रोचक रिश्ता बनता दिख रहा है. बाजार से जुड़े मंत्रालयों में पदस्थ नौकरशाह शेयर बाजार की गतिविधियों पर नजर रखने के लिए बिजनेस न्यूज चैनलों पर नजर गड़ाए रहते हैं. कई बार फैसलों को यह ध्यान में रखते हुए सार्वजनिक किया जाता है, जिससे मीडिया में इसका पर्याप्त प्रभाव पड़े. इतना ही नहीं, फैसलों की टाइमिंग में बाजार पर पड़ने वाले असर को भी खासी तवज्जो दी जाती है. इस्पात की कीमतों में फेरबदल को लेकर हाल के दिनों में इस्पात मंत्रालय के सचिव अतुल चतुर्वेदी की घोषणाएं भी हैरान करने वाली हैं, क्योंकि इससे सार्वजनिक और निजी क्षेत्र की इस्पात कंपनियों के शेयर के दामों में भी उतार–चढ़ाव देखने को मिला. शेयर बाजार का जो स्वरूप है, उसके मद्देनजर महत्वपूर्ण मंत्रालयों के सचिवों की ओर से होने वाली घोषणाएं स्वाभाविक तौर पर शेयर की कीमतों में उतार–चढ़ाव का कारण बन सकती हैं. बाजार के मामलों में चतुर्वेदी के इस हस्तक्षेप पर नौकरशाह लगातार नजर रख रहे हैं. यह ऐसा मामला भी नहीं है, जिसे इतने हल्के में लिया जाए.

सिब्बल की निराशा

देश भर में विश्वविद्यालयों और अन्य शिक्षण संस्थानों पर नजर रखने के लिए मानव संसाधन विकास मंत्री कपिल सिब्बल नेशनल कमीशन फॉर हायर एजुकेशन एंड रिसर्च (एनसीएचईआर) के गठन की दिशा में गंभीर हैं. सिब्बल द्वारा एनसीएचईआर के गठन के पीछे नॉलेज कमीशन का वह प्रस्ताव है, जिसमें उसने देश में उच्च शिक्षा का स्तर बनाए रखने के लिए एक स्वतंत्र निकाय के गठन की अनुशंसा की थी. नॉलेज कमीशन की अनुशंसा में यह भी कहा गया था कि नया गठित होने वाला निकाय देश में पहले से मौजूद सभी नियामक संस्थाओं की जगह ले लेगा, लेकिन सिब्बल के इस प्रस्ताव के चर्चा में आते ही स्वास्थ्य मंत्रालय एवं कानून मंत्रालय इसके विरोध में खड़े हो गए हैं. इन विभागों के मंत्री गुलाम नबी आजाद एवं वीरप्पा मोइली इस बात को लेकर चिंतित हैं कि मानव संसाधन विकास मंत्रालय विधिक और मेडिकल शिक्षण संस्थानों पर भी अपना नियंत्रण स्थापित करने की कोशिश कर रहा है. अब जबकि प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह भी ऐसी किसी सर्वशक्तिशाली नियामक संस्था के गठन से इंकार कर चुके हैं, मानव संसाधन मंत्रालय के अधिकारी सबको यह भरोसा दिलाते फिर रहे हैं कि उनका उद्देश्य अपने अधिकार क्षेत्र को बढ़ाना नहीं था.

मनीला में बने रहेंगे लाहिड़ी

वर्ष 2007 में जब डॉ. अशोक लाहिड़ी को मनीला स्थित एशियन डेवलपमेंट बैंक में भारत का प्रतिनिधि नियुक्त किया गया था तो यह एक नई शुरुआत थी. लाहिड़ी उस समय सरकार के मुख्य आर्थिक सलाहकार थे और ऐसा पहली बार हुआ था, जब किसी पेशेवर नौकरशाह को इस पद पर नियुक्त किया गया था. सूत्रों पर भरोसा करें तो सरकार एक बार फिर नई परंपरा की शुरुआत कर रही है. लाहिड़ी का कार्यकाल इस साल जून में खत्म हो रहा है, लेकिन सरकार उनके कार्यकाल को बढ़ाने का मन बना रही है और वह अगले एक साल तक इस पद पर बने रह सकते हैं. लाहिड़ी के कार्यकाल में विस्तार से प्रधानमंत्री कार्यालय में सचिव एम एन प्रसाद को मनीला भेजे जाने की अफवाहों पर भी विराम लग गया है. हालांकि नौकरशाही के मामलों में तब तक किसी खबर पर भरोसा नहीं किया जा सकता, जब तक उसकी औपचारिक घोषणा न हो जाए, लेकिन तमाम संभावनाएं इसी बात की ओर इशारा कर रही हैं कि 1972 बैच के आईएएस अधिकारी प्रसाद पीएमओ में ही अपने पद पर बने रह सकते हैं. ऐसा माना जा रहा है कि विभिन्न राज्यों और खासकर बिहार में संभावित विधानसभा चुनावों के मद्देनजर प्रसाद का यहीं बने रहना ज्यादा फायदेमंद हो सकता है.

dilipcherian@chauthiduniya.com

साउथ ब्लॉक

कोई आईएएस बनेगा सीएमडी

पंजाब और सिंध बैंक का अगला सीएमडी कौन बनेगा? एक अप्रत्याशित कदम के तौर यह बात सामने आ रही है कि अगला सीएमडी कोई आईएएस अधिकारी ही बनेगा. सूत्रों के मुताबिक़, अब तक 5 आईएएस के नामों पर चर्चा की जा चुकी है और इन्हीं पांचों में से किसी एक के नाम पर मुहर लगाई जाएगी. यह सभी अधिकारी 1978 से 1982 बैच के हैं. यह देखना भी दिलचस्प होगा कि इनमें से चुने गए सीएमडी का दर्जा क्या होगा? संयुक्त सचिव या अतिरिक्त सचिव.

सहाय की जगह देबाशीष

1987 बैच के आईएफएस अधिकारी अमित सहाय का भारी उद्योग मंत्रालय में निदेशक पद का कार्यकाल ख़त्म हो चुका है. इस पद पर देबाशीष जना के आने की संभावना सबसे अधिक है. देबाशीष 1992 बैच के आईएफएस अधिकारी हैं.

नाइक का प्रमोशन

1974 बैच के अधिकारी बी नाइक को पदोन्नति दे दी गई है. नाइक को स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण विभाग में संयुक्त सचिव बनाया गया है.

हवाई सुरक्षा का मुखिया कौन?

आजकल नागरिक उड्डयन मंत्रालय के अधिकारियों के बीच एक दिलचस्प रस्साकशी चल रही है और वह इस बात पर कि मंत्रालय के हवाई सुरक्षा विभाग का अगला मुखिया कौन बनेगा? हरियाणा कैडर के 1975 बैच के आईपीएस अधिकारी विपिन कुमार इस दौड़ में सबसे आगे हैं. इससे पहले 1974 बैच के जीएस मालही ने इस पद के लिए दावेदारी की थी, जिसे नहीं माना गया. 1977 बैच के एस एस दयाल भी इस दौड़ में शामिल थे, लेकिन उन्हें मुंबई पुलिस में कमिश्नर बनाकर भेज दिया गया है. फ़िलहाल इस विभाग के मुखिया आरआरपीएन शाही हैं. शाही 1973 बैच के आईपीएस अधिकारी हैं.

देश के लोगों पर गोली नहीं चलाएंगे

पृष्ठ 1 का शेष

करने, संसाधन मुहैया कराने और घायलों को बाहर निकालने के लिए तैनात हैं. इसके अलावा वायुसेना के ट्रांसपोर्ट विमान एएन–32 को भी ज़रूरत पड़ने पर इस काम में लगाने के लिए तैयार रखा गया है.

सेना की स्पष्ट असहमति के बाद रक्षा मंत्रालय ने नक्सल विरोधी अभियान में सेना के इस्तेमाल की स्थितियों पर गृह मंत्रालय की ओर से पेश किए गए दस्तावेज़ों और रिपोर्टों की समीक्षा शुरू कर दी है. गृह मंत्रालय ने सरकार को नक्सल विरोधी अभियान में सेना के इस्तेमाल का ब्लू प्रिंट तैयार करके दिया था. पिछले दिनों रक्षा मंत्री के साथ सेना के तीनों अंगों के प्रमुखों की बैठक में भी रक्षा प्रमुखों ने नक्सल विरोधी अभियान में सेना उतारे जाने पर असहमति जताई थी और उसके परिणामस्वरूप होने वाली भीषण तबाही का अंदेशा जताया था. सेना प्रमुखों का मानना था कि नक्सली मसला राज्यों की सिविल पुलिस का मसला है और स्थानीय समस्याओं और स्थानीय भौगोलिकता से निबटना उसका प्राथमिक दायित्व है. दंतेवाड़ा में सीआरपीएफ जवानों के मारे जाने की घटना और झारग्राम रेल हादसा जैसी घटनाएं स्थानीय पुलिस व प्रशासनिक व्यवस्था के कोलैप्स हो जाने का प्रमाण है. फिर इसका दायित्व तय किए बग़ैर सेना को मैदान में उतारने का फ़ैसला कैसे लिया जा सकता है? सेना ने नक्सल ऑपरेशन में शामिल किए जाने से भले ही विरोध जताया हो, पर नक्सलियों से निबटने के लिए पुलिसकर्मियों को और सघन (इंटेसिव) प्रशिक्षण देने व अलग से विशेष ट्रेनिंग सेंटर खोलने की वकालत की है. रक्षा मंत्रालय से यह सिफ़ारिश की गई है कि विशेष ट्रेनिंग देने के लिए मिजोरम स्थित काउंटर इंसरजेंसी एंड जंगल वारफेयर स्कूल की तर्ज पर अलग से एक विशेष ट्रेनिंग सेंटर की स्थापना की जाए.

आपको यह याद दिला दें कि दंतेवाड़ा की घटना के फौरन बाद गांधीनगर में बाकायदा प्रेस कॉन्फ्रेंस बुला कर वायुसेना प्रमुख एयर चीफ मार्शल पीवी नाइक ने स्पष्ट कर दिया था कि नक्सली ठिकानों पर हवाई हमलों से वायुसेना कतई सहमत नहीं है. नाइक ने कहा था कि अधिकतम घातकता (नुक़सान) देने के लिए सेना को विशेष रूप से प्रशिक्षित किया जाता है. ऐसे में घातक हथियारों के साथ नक्सलियों के ख़िलाफ़ उतरना और हवाई हमले करना बिल्कुल तार्किक नहीं है. हवाई हमले में वायुसेना को कम से कम 15 सौ से 18 सौ मीटर दूर से रॉकेट फायर करना होता है. इसमें लक्ष्य (टार्गेट) की सटीक पहचान नहीं हो पाती. अगर ख़ुफ़िया सूचनाएं 120 फ़ीसदी सही हों, तभी अपने देश के अंदर ऐसे हवाई हमले किए जा सकते हैं, जो बिल्कुल सटीक तरीक़े से नक्सली अड्डे को तबाह कर सकें. अन्यथा सिविल आबादी में भीषण तबाही मच सकती है. वायुसेना केवल अपने ट्रांसपोर्ट विमान और डिप्लॉयमेंट के लिए हेलीकॉप्टर वग़ैरह दे सकती है, लेकिन सेना के हेलीकॉप्टर नक्सलियों का निशाना बने तो उसके बाद का परिणाम क्या होगा. थल सेनाध्यक्ष जनरल वीके सिंह का भी यही कहना है कि नक्सलियों के ख़िलाफ़ सेना को सीधे मुक़ाबले में उतारना कतई उचित नहीं है. सिविल पुलिस और अर्ध सैनिक बलों को ही इसके लिए तैयार और ज़िम्मेदार बनाना होगा. ध्यान रखना चाहिए कि करगिल युद्ध में शहीद हुए कुल 523 फौजियों में से 208 फौजी इन्हीं तथाकथित नक्सल प्रभावित राज्यों के हैं, जो मध्य कमान के तहत आते हैं. इसी क्षेत्र में मध्य कमान के 18 विभिन्न महत्वपूर्ण रेजिमेंट्स और अन्य कई संवेदनशील सैन्य प्रतिष्ठान भी हैं.

सियासत ने सेना को अनावश्यक विवाद में घसीट लिया है. नक्सल मामले में सेना के इस्तेमाल को लेकर सरकार ने इतना शोर मचाया कि जंगलों के अंदर चलने वाली सेना की रुटीन गतिविधियों को भी नक्सल विरोधी अभियान की तैयारियों के रूप में देखा जा रहा है. केंद्रीय ख़ुफ़िया एजेंसी (आईबी) की रिपोर्ट ख़ुद इसका खुलासा करती है. आईबी के नक्सल मामले देखने वाली शाखा के एक आला अधिकारी ने कहा कि सेना का काम ही आम आबादी से दूर जंगलों और निर्जन इलाक़ों में चलता है. लेकिन जबसे नक्सल विरोधी अभियान में सेना के इस्तेमाल के मामले ने जोर पकड़ा, जंगलों के अंदर सेना की नियमित ट्रेनिंग, फायरिंग अभ्यास, युद्धाभ्यास और तमाम रुटीन एक्सरसाइजेज भी नक्सलियों के ख़िलाफ़ चल रही तैयारियों के बतौर देखी जाने लगी हैं. इससे सेना के प्रति अनावश्यक अविश्वास का माहौल बन रहा है. आईबी ने गृह मंत्रालय को इस बारे में आगाह भी किया है. दूसरी तरफ़ नक्सल विरोधी अभियान को प्राकृतिक संसाधनों से भरे वन क्षेत्रों से आदिवासियों और मूल वासियों के सफाये की पूंजीपतियों की साजिश के बतौर देखा जा रहा है. आईबी ने अपनी रिपोर्ट में साफ–साफ कहा है कि नक्सल प्रभावित इलाक़ों में स्थानीय प्रशासन और पुलिस आम जनता का विश्वास प्राप्त करने का कोई प्रयास नहीं कर रही. इन इलाक़ों में सिविल पुलिस अपनी प्राथमिक ड्यूटी करने तक से कन्नी काट रही है.

अपने ही देशवासियों से युद्ध की तैयारियां शुरू हो चुकी हैं. नक्सल प्रभावित इलाक़ों की जासूसी करने के लिए अमेरिकी ख़ुफ़िया सैटेलाइट की मदद, सीआरपीएफ, कोबरा फोर्स, सी–60, ग्रे हाउंड्स, इंडो तिब्बत बॉर्डर पुलिस, एंटी नक्सल स्ट्राइकिंग फोर्स और सात हज़ार तीन सौ करोड़ रुपये झोंके जाने के बाद अब सेना उतारने की तैयारी! सेना का भी सर्वे है कि नक्सल प्रभावित राज्यों में हीरा, सोना, आयरन–ओर, बॉक्साइट, चूना पत्थर, कोयला, ग्रेनाइट, सिलिका, क्वार्टजाइट जैसे 28 बेशक़ीमती खनिजों का खजाना है. इस खजाने पर देश और विदेश के पूंजीपतियों की लोलुप निगाह लगी है. दंडकारण्य की पहाड़ियां, जल स्रोत और जंगल विभिन्न पूंजी घरानों को सरकार द्वारा बेचे जा चुके हैं. बॉक्साइट का खनन करने के लिए उड़ीशा का नियमगिरि पर्वत बहुराष्ट्रीय कंपनी वेदांता (स्टरलाइट) को महज़ सात फ़ीसदी की रॉयल्टी पर कौड़ियों के मोल बेचा जा चुका है. नियमगिरि पर्वत पर रहने वाले डोंगरी कौंध आदिवासियों को वहां से खदेड़े जाने की तैयारी चल रही है. पर्वतीय क्षेत्र ही कौंध जनजाति के लिए ऑक्सीजन है. देश का 16 फ़ीसदी कोयला और 20 फीसदी लौह अयस्क झारखंड में है, जिस पर टाटा, एस्सार, जिंदल जैसे घरानों का कब्जा है. विश्व बाज़ार में आयरन–ओर की क़ीमत 210 डॉलर (10 हजार रुपए भारतीय मुद्रा) प्रति टन है, जबकि उक्त पूंजी घराने उसे 27 रुपए प्रति टन के हिसाब से ख़रीदते हैं और विश्व बाज़ार में बेच कर अनापशनाप मुनाफ़ा कमाते हैं. झारखंड, उड़ीशा और छत्तीसगढ़ में बेशक़ीमती खनिजों से भरी लाखों एकड़ भूमि टाटा, बिरला, एस्सार, जिंदल, मित्तल, वेदांता, पॉस्को, होलकिम, रायो टिंटो जैसे कॉरपोरेट–घरानों के हाथों बेची जा चुकी है. इन इलाकों के मूल निवासी खदेड़े और मारे जा रहे हैं. पूंजी घरानों के इस अभियान में केवल नक्सली संगठन ही बाधा बन रहे हैं. सेना के बूते वे इसे भी उखाड़ फेंकने के तिकड़म में लगे हैं.

feedback@chauthiduniya.com

पांच वर्ष में सेना पर दर्ज हुए मानवाधिकार हनन के मामले

अभियोग	जम्मू–कश्मीर	पूर्वोत्तर राज्य	कुल संख्या
शिक़ायतें दर्ज	936	385	1321
जांच हुई	909	371	1277
जांच जारी	30	14	44
मनगढ़ंत	881	342	1223
सत्य पाई गई	25	29	54
सज़ा हुई	50	65	115
मुआवज़ा मिला	06	11	17

मेजर जनरल वीएम कालिया

चौथी दुनिया
देश का पहला साप्ताहिक अखबार
वर्ष 2 अंक 15
दिल्ली, 21 जून–27 जून 2010
संपादक
संतोष भारतीय
मैसर्स अंकुश पब्लिकेशंस प्राइवेट लिमिटेड के लिए मुद्रक व प्रकाशक रामपाल सिंह भदौरिया द्वारा जागरण प्रकाशन लिमिटेड डी 210–211 सेक्टर 63, नोएडा उत्तर प्रदेश से मुद्रित एवं के – 2, गैनन, चौधरी बिल्डिंग, कनॉट प्लेस, नई दिल्ली 110001 से प्रकाशित
संपादकीय कार्यालय
के –2, गैनन, चौधरी बिल्डिंग
कनॉट प्लेस, नई दिल्ली 110001
कैंप कार्यालय एफ–2, सेक्टर –11, नोएडा
गौतमबुद्ध नगर उत्तर प्रदेश–201301
फोन न.
संपादकीय 0120–4783999/11–23418962
विज्ञापन + 91 9899815169
प्रसार + 91 9810017924
फैक्स न. 0120–4783950

पृष्ठ–16 (+4)

चौथी दुनिया में छपे सभी लेख अथवा सामग्री पर चौथी दुनिया का कॉपीराइट है. बिना अनुमति के किसी लेख अथवा सामग्री के पुन: प्रकाशन पर क़ानूनी कार्रवाई की जाएगी.
समस्त कानूनी विवादों का क्षेत्राधिकार दिल्ली न्यायालयों के अधीन होगा.

देश के सामने एक गंभीर ख़तरा मंडरा रहा है. प्रजातंत्र ख़तरे में है, लेकिन इस ख़तरे का आभास न तो सरकार को है और न ही राजनीतिक दलों को.

मुसलमान ही नहीं, प्रजातंत्र भी ख़तरे में है

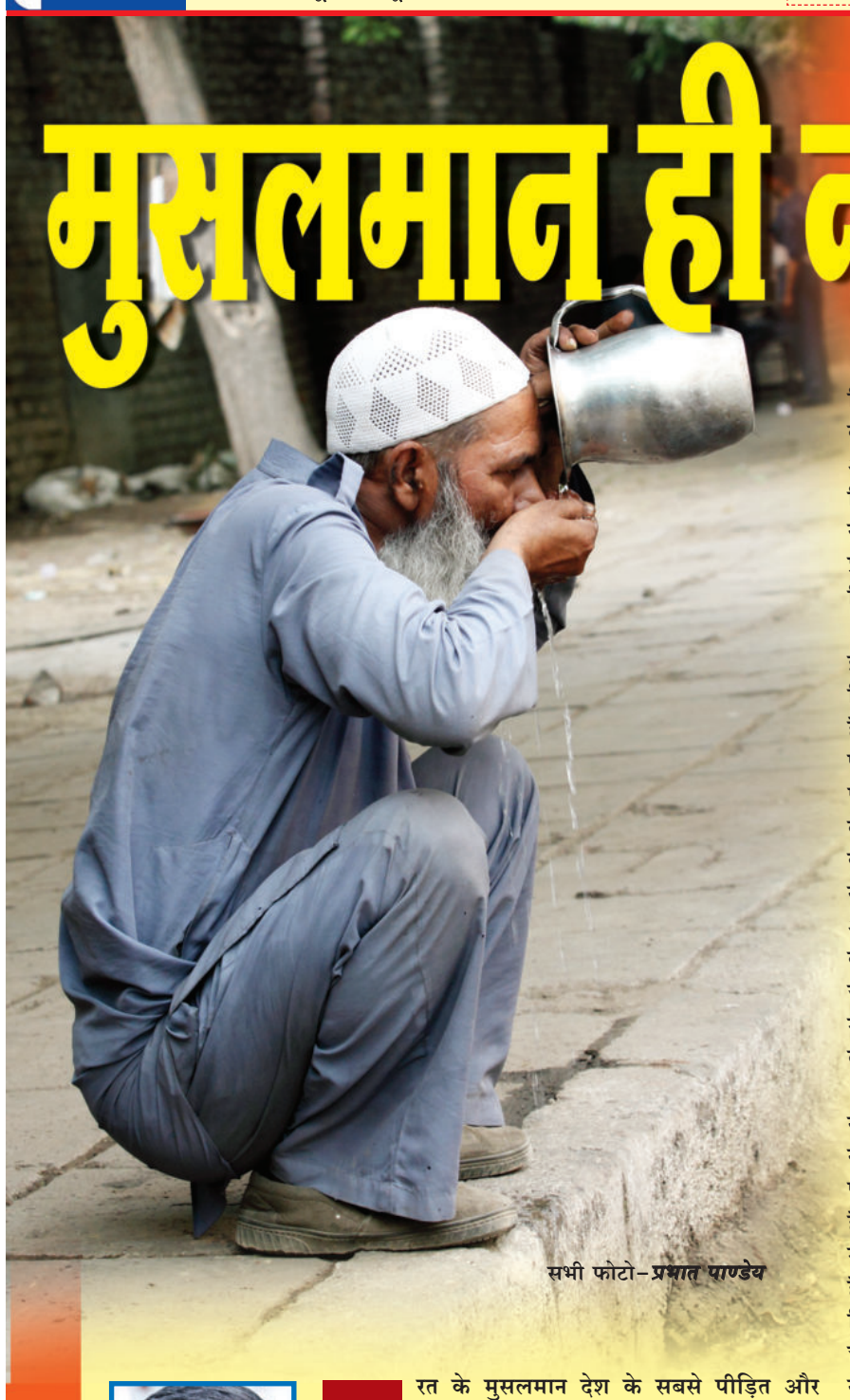

सभी फोटो- *प्रभात पाण्डेय*

मनीष कुमार

भारत के मुसलमान देश के सबसे पीड़ित और शोषित वर्गों का हिस्सा बन चुके हैं. राजनीति में मुसलमान हाशिए पर हैं. प्रशासन, सेना और पुलिस में मुसलमानों की संख्या शर्मनाक रूप से कम है, न्यायालयों में मुसलमानों की उपस्थिति बहुत कम है और बाकी कसर उदारीकरण, निजीकरण और वैश्वीकरण की आर्थिक नीति ने पूरी कर दी है, जिसकी मार मुसलमानों पर सबसे ज़्यादा पड़ रही है. डॉ. भीमराव अंबेदकर ने सामाजिक असमानता को प्रजातंत्र के लिए ख़तरा बताया था. मुसलमान सामाजिक समानता से कोसों दूर हैं और न ही उनकी राजनीतिक प्रजातंत्र में हिस्सेदारी है. मुसलमानों के पिछड़ेपन की वजह आज भारत के वेलफेयर स्टेट होने पर सवाल खड़ा कर रही है. यह प्रजातंत्र पर एक बदनुमा दाग बन कर उभर रहा है. एक सफल राजनीतिक प्रजातंत्र के लिए सामाजिक प्रजातंत्र ज़रूरी हिस्सा है. जब तक सामाजिक प्रजातंत्र का आधार न मिले, राजनीतिक प्रजातंत्र चल नहीं सकता. स्वतंत्रता को समानता से अलग नहीं किया जा सकता और न समानता को स्वतंत्रता से. इसी तरह स्वतंत्रता और समानता को बंधुत्व से अलग नहीं किया जा सकता. भारत एक विरोधाभासी जीवन में प्रवेश कर चुका है. राजनीतिक समानता को एक व्यक्ति-एक वोट का सिद्धांत समझ लिया गया है, जबकि समाज में आर्थिक और सामाजिक असमानता है. भारत का सबसे बड़ा अल्पसंख्यक वर्ग पहले से ज्यादा शोषित, पहले से कहीं ज़्यादा पीड़ित और सत्ता से दूर चला गया है. यह देश में प्रजातंत्र के लिए ख़तरे की घंटी है. अफसोस की बात यह है कि देश चलाने वाले इस ख़तरे से बिल्कुल अंजान हैं.

1947 में जब भारत का बंटवारा हुआ तो कुछ लोगों ने भारत को अपना देश मानकर पाकिस्तान जाने से इंकार कर दिया. इन लोगों ने भारत को ही अपना वतन माना और मुस्लिम लीग की बातों पर भरोसा नहीं किया. इन लोगों ने भारत में रहने का फ़ैसला अपनी मर्ज़ी से किया था. उन्हें यहां की गंगा-जमुनी तहज़ीब ज़्यादा पसंद आई. साठ से ज़्यादा साल गुज़र गए. इस देश से मोहब्बत करने का ईनाम यह मिला है कि आज भारत का मुसलमान देश के सबसे पीड़ित और पिछड़े समाज में तब्दील हो गया है. मुसलमान नौजवान बेरोज़गारी के साथ-साथ तिरस्कार का भी सामना कर रहे हैं. देश के राजनीतिक दलों को मुसलमानों का वोट तो चाहिए, लेकिन जब उनकी समस्याओं को हल करने का वक़्त आता है तो वे मौन धारण कर लेते हैं. यही वजह है कि सरकार के सौतेले रवैये की वजह से आज मुसलमानों की स्थिति बद से बदतर होती जा रही है.

आज़ादी की लड़ाई के दौरान ही यह तय हो गया था कि आज़ाद भारत एक रिप्रेजेंटेटिव डेमोक्रेसी और वेलफेयर स्टेट होगा. यह भारत की सामाजिक संरचना के हिसाब से सबसे उचित व्यवस्था थी. गांधी, नेहरू और तमाम नेताओं ने यही सोचा था कि अंग्रेजों की हुकूमत से आज़ादी के बाद सरकार ग़रीब जनता के विकास के लिए काम करेगी. दुनिया भर में मौजूद सभी शासन प्रणालियों में प्रजातंत्र को सबसे बेहतर इसलिए माना गया है, क्योंकि इस व्यवस्था के अंतर्गत शासन में हर वर्ग और समुदाय का अधिकार सुरक्षित रहता है और उनकी समान हिस्सेदारी होती है. अल्पसंख्यकों के साथ-साथ ग़रीब और पिछड़े वर्गों की भी सरकार चलाने में हिस्सेदारी प्रजातंत्र को दूसरी किसी व्यवस्था से अलग बनाती है. यही वजह है कि भारत के संविधान निर्माताओं में मतैक्य था कि आज़ाद भारत में प्रजातांत्रिक सरकार बनेगी, जिसमें छोटे-बड़े सभी वर्गों की समान हिस्सेदारी होगी. आज हमारे सामने भारत में प्रजातंत्र की साख ख़त्म होने का ख़तरा मंडराने लगा है. प्रजातांत्रिक व्यवस्था के बारे में कई लोगों को यह भ्रम है कि यह बहुमत पर आधारित है. जब यूरोप में प्रजातंत्र का विकास हुआ, तब प्रजातंत्र का रूप अलग था. उस वक़्त बहुमत का सिद्धांत प्रजातंत्र का मूलमंत्र था. लेकिन दुनिया की स्थिति में बदलाव हुआ. पूंजीवाद और उदार प्रजातंत्र की आंधी में बहुमत के नाम पर सरकार निरंकुश होती चली गई. ग़रीब किसान और मज़दूर सत्ता से दूर चले गए. इसके विरोध में मार्क्सवादी विचारधारा का फैलाव हुआ. नतीजा यह हुआ कि पूरे यूरोप में प्रजातंत्र का चेहरा बदलने लगा. लेजेफेयर स्टेट का चरित्र बदला, वेलफेयर स्टेट की स्थापना हुई, जिसमें अल्पसंख्यकों को भी तरजीह मिलने की व्यवस्था लागू हुई. भारत के संविधान निर्माताओं ने ग़रीबों, किसानों एवं मज़दूरों के विकास के लिए प्रजातंत्र और वेलफेयर स्टेट स्थापित किया. मुसलमानों की हालत इस बात की गवाह है कि भारत का प्रजातंत्र और वेलफेयर स्टेट अपने एजेंडे से विमुख हो चुका है. जिस वजह से संविधान निर्माताओं ने इसे अपनाया था, उसमें भारत विफल हो गया है.

ग़रीब मुसलमानों के बारे में जो सच्चाई है, वह कलेजा दहला देने वाली है. ग्रामीण इलाक़ों में ग़रीबी रेखा के नीचे वाले 94.9 फ़ीसदी मुसलमानों को मुफ्त अनाज नहीं मिल रहा है. सिर्फ 3.2 फ़ीसदी मुसलमानों को सब्सिडाइज्ड लोन का लाभ मिल रहा है. सिर्फ़ 2.1 फ़ीसदी ग्रामीण मुसलमानों के पास ट्रैक्टर हैं और सिर्फ़ 1 फ़ीसदी के पास हैंडपंप की सुविधा है. शिक्षा की स्थिति और भी खराब है. गांवों में 54.6 फ़ीसदी और शहरों में 60 फ़ीसदी मुसलमान कभी किसी स्कूल में नहीं गए. पश्चिम बंगाल में मुसलमानों की संख्या 25 फ़ीसदी से ज़्यादा है, लेकिन सरकारी नौकरी में वे सिर्फ़ 4.2 फ़ीसदी हैं. जबकि यहां वामपंथियों की सरकार है, फिर भी राज्य की सरकारी कंपनियों में काम करने वाले मुसलमानों की संख्या शून्य है. सेना, पुलिस और अर्धसैनिक बलों में मुसलमानों की संख्या बहुत ही कम है. मुसलमानों की बेबसी का आंकड़ा जेलों से मिलता है. हैरानी की बात यह है कि मुसलमानों की संख्या जेल में ज़्यादा है. महाराष्ट्र में 10.6 फ़ीसदी मुसलमान हैं, लेकिन यहां की जेलों में मुसलमानों की संख्या 32.4 फ़ीसदी है. दिल्ली में 11.7 फ़ीसदी मुसलमान हैं, लेकिन जेल में बंद 27.9 फ़ीसदी क़ैदी मुसलमान हैं.

मुसलमानों पर हुए सारे रिसर्च का नतीजा एक ही है. इसे दुर्भाग्य ही कहेंगे कि सरकार के किसी भी विभाग में मुसलमानों की हिस्सेदारी जनसंख्या के अनुपात में नहीं है. प्रशासनिक सेवाओं में मुसलमानों की संख्या दयनीय है. देश में सिर्फ़ 3.22 फ़ीसदी आईएएस, 2.64 फ़ीसदी आईपीएस और 3.14 फ़ीसदी आईएफएस मुसलमान हैं. इससे भी ज़्यादा हैरान करने वाली बात यह है कि सिखों और ईसाइयों की आबादी मुसलमानों से कम है, लेकिन इन सेवाओं में दोनों की संख्या मुसलमानों से ज़्यादा है. देश के सरकारी विभागों की हालत भी ऐसी ही है. ज्यूडिसियरी में मुसलमानों की हिस्सेदारि सिर्फ़ 6 फ़ीसदी है. जहां तक बात राजनीति में हिस्सेदारी की है तो यहां भी चौंकाने वाले तथ्य सामने आते हैं. आज़ादी के साठ साल के बाद भी अब तक सिर्फ़ सात राज्यों में मुस्लिम मुख्यमंत्री बन पाए हैं. हैरानी की बात यह यह है कि जम्मू-कश्मीर के फारुख़ अब्दुल्ला के अलावा देश में एक भी ऐसा मुस्लिम मुख्यमंत्री नहीं बन पाया, जो पांच साल तक शासन कर सका हो. राजनीति में मुसलमान हाशिए पर हैं, इस बात की गवाह लोकसभा में मुस्लिम सांसदों की मौजूदा संख्या है. फ़िलहाल लोकसभा में 543 सीटों में सिर्फ़ 29 सांसद मुसलमान हैं. सामाजिक पिछड़ेपन के साथ-साथ प्रजातंत्र के विभिन्न स्तंभों में भी मुसलमान हाशिए पर हैं.

जिस देश का सबसे बड़ा अल्पसंख्यक समुदाय पिछड़ा, अशिक्षित, कमज़ोर और ग़रीब रह जाए तो उसका कभी भी विकास नहीं हो सकता. सरकार किसी भी पार्टी की हो, अगर वह भारत का विकास चाहती है तो हर ग़रीब और पिछड़े समुदाय को विकास की धारा से जोड़ना उसका दायित्व बन जाता है. अशिक्षा मुस्लिम समाज का सबसे बड़ा अभिशाप है. हैरानी की बात यह है कि आज़ादी के इतने साल बीत जाने के बावजूद मुस्लिम नेताओं और सरकार को इस अभिशाप का एहसास नहीं है. मदरसों को बेहतर बनाने की बात होती है तो हिंदू और मुस्लिम कट्टरवादी संगठन एक साथ इसका विरोध करते हैं. और जो सेकुलर और प्रोग्रेसिव कहलाने वाली पार्टियां हैं, उन्हें यह लगता है कि जब तक मुसलमान अशिक्षित रहेंगे, तब तक उन्हें वोटबैंक की तरह इस्तेमाल किया जा सकता है. अब इस बात पर तो सिर्फ़ दुःख ही व्यक्त किया जा सकता है कि आज़ादी के 60 साल के बाद भी हमारी सरकार इस नतीजे पर नहीं पहुंच पाई है कि मुसलमानों की अशिक्षा कैसे दूर की जाए और मदरसों को कैसे बेहतर बनाया जाए. अब इंतजार अगले 60 साल का है, जिसमें दुनिया कहां से कहां निकल जाएगी और तब तक भारत में इस विषय पर हम बहस ही करते रह जाएंगे.

निजीकरण, वैश्वीकरण और आर्थिक उदारवाद का देश के ग़रीब मुसलमानों पर सबसे बुरा असर हुआ है. पिछले दो दशकों से भारत नव उदारवाद की आर्थिक नीति की चपेट में है. इसका सबसे बुरा असर मुसलमानों पर पड़ा है, ख़ासकर बुनकर, दस्तकार, कारीगर और कढ़ाई-रंगाई आदि करने वाले लोग इस आर्थिक नीति की वजह से हाशिए पर आ गए हैं. वे बेरोज़गार हो गए हैं. इसका नतीजा यह है कि ग़रीबी की वजह से उनके बच्चे स्कूल से दूर चले गए हैं. अब शिक्षा के निजीकरण से ग़रीब अल्पसंख्यक पढ़ाई-लिखाई से वंचित रह जाएंगे. सरकार एक तरफ सरकारी नौकरियों में कटौती कर रही है. उसकी नीतियों और बदलती आर्थिक व्यवस्था में देश के पढ़े-लिखे लोग सरकारी नौकरी छोड़ ज़्यादा पैसे और सफलता के लिए प्राइवेट नौकरी की ओर जा रहे हैं. समझने की बात यह है कि ऐसे में अगर 10 साल के बाद मुसलमानों को रिजर्वेशन दे भी दिया जाता है तो भी अल्पसंख्यक पिछड़े ही बने रहेंगे और देश का दूसरा वर्ग आगे निकल जाएगा.

जब तक सामाजिक प्रजातंत्र का आधार न मिले, राजनीतिक प्रजातंत्र चल नहीं सकता. स्वतंत्रता को समानता से अलग नहीं किया जा सकता और न समानता को स्वतंत्रता से. इसी तरह स्वतंत्रता और समानता को बंधुत्व से अलग नहीं किया जा सकता. भारत एक विरोधाभासी जीवन में प्रवेश कर चुका है. राजनीतिक समानता को एक व्यक्ति-एक वोट का सिद्धांत समझ लिया गया है, जबकि समाज में आर्थिक और सामाजिक असमानता है. भारत का सबसे बड़ा अल्पसंख्यक वर्ग पहले से ज़्यादा शोषित, पहले से कहीं ज़्यादा पीड़ित और सत्ता से दूर चला गया है. जिस व्यवस्था में अल्पसंख्यकों के अधिकार, सत्ता में उनकी हिस्सेदारी और विकास सुनिश्चित नहीं हैं, वह प्रजातंत्र के नाम पर धोखा है.

हम जब भी मुसलमानों की बात करते हैं तो उन्हें एक पैन इंडियन समाज मान लेते हैं. यह सत्य नहीं है और यह ख़तरनाक भी है. भारत का मुस्लिम समाज किसी दूसरे धर्म की तरह सजातीय नहीं है. मुस्लिम समाज भी दूसरों की तरह आर्थिक, सामाजिक, भाषाई, एथनिक, क्षेत्रीय और जातिगत आधार पर बंटा हुआ है. भारत में जैसे हिंदू समाज है, वैसे ही मुस्लिम समाज भी है. दूसरे धर्मों के ग़रीब और पिछड़े लोगों को जिस तरह से सरकारी योजनाओं का फ़ायदा मिल रहा है, वह फ़ायदा मुसलमानों को भी मिलना चाहिए. भारत में मुसलमानों की स्थिति अनुसूचित जाति और जनजातियों से भी खराब है. वजह साफ़ है कि ग़रीबी की मार दोनों पर है, लेकिन एक के लिए सरकार की मदद मौजूद है और मुसलमानों को उनकी क़िस्मत के सहारे छोड़ दिया गया है. अब देश चलाने वालों और मुस्लिम समाज के रहनुमाओं के सामने यह सवाल है कि ग़रीबों के बीच भी धर्म के नाम पर भेदभाव क्यों किया जा रहा है.

मुसलमानों के पिछड़ेपन के मूल में मुस्लिम नेताओं की भी भूमिका रही है. समस्या यह है कि सामाजिक-आर्थिक विकास के मुद्दों के बजाय ज़्यादातर मुस्लिम नेता धार्मिक एवं सांस्कृतिक जैसे भावनात्मक मुद्दों को आगे रखते हैं. जब भी हम मुसलमानों के हालात के बारे में बात करते हैं तो मसला मुस्लिम पर्सनल लॉ, अलीगढ़ मुस्लिम यूनिवर्सिटी के चरित्र और उर्दू ज़ुबान पर आकर ख़त्म हो जाता है. मुस्लिम नेताओं के बीच सामाजिक एवं आर्थिक विकास बहस का मुद्दा नहीं है. शुरुआत से ही मुसलमान अपने अधिकार से ज़्यादा सुरक्षा को लेकर चिंतित रहे, लेकिन इसे बदलने की ज़रूरत है. यह समझने की ज़रूरत है कि अगर अधिकार होंगे तो सुरक्षा खुद बखुद हो जाएगी. जब तक मुसलमान बेरोज़गार, ग़रीब और सत्ता में भागीदारी से दूर रहेंगे, तब तक कोई सरकार, कोई पार्टी एवं कोई नेता उन्हें सुरक्षा नहीं दे सकता. इसलिए अधिकार की लड़ाई ही वक़्त की मांग है, वरना देर हो जाएगी.

जितनी भी सेकुलर पार्टियां हैं, वे सब अपने चुनावी घोषणापत्र में मुसलमानों के रिजर्वेशन की बात दोहराती हैं और सरकार बनते ही उसे ठंडे बस्ते में डाल दिया जाता है. चौथी दुनिया अख़बार ने जब दो साल से संसद की अलमारी में सड़ रही रंगनाथ मिश्र कमीशन की रिपोर्ट छापी तो लोकसभा और राज्यसभा में हंगामा मच गया. लेकिन सरकार ने इसके बावजूद इसे पेश नहीं किया. इसके बाद जब संपादक संतोष भारतीय ने यह कहकर ललकारा कि राज्यसभा नपुंसक लोगों का क्लब बन गई है तो चौथी दुनिया के एडिटर को प्रिवेलेज नोटिस थमा दिया गया. इसके बाद जब मुलायम सिंह ने लोकसभा में आवाज़ उठाई और सदन की कार्यवाही न चलने देने की धमकी दी, तब सरकार ने रंगनाथ मिश्र कमीशन की रिपोर्ट संसद में पेश की. सिर्फ़ पेश की, कोई कार्रवाई नहीं की. रिपोर्ट लागू करने की अब तक कोई सुगबुगाहट भी नहीं है. यह सरकार वही है, जिसके मुखिया मनमोहन सिंह ने कुछ साल पहले यह कहा था कि देश के संसाधनों पर अल्पसंख्यकों का ज़्यादा अधिकार है. सरकार की यह कैसी मजबूरी है कि वह वादाफ़रामोशी पर आमादा है. मुसलमान किस पर भरोसा करें. यह क्यों न मान लिया जाए कि राजनीतिक दल चाहे वे किसी भी विचारधारा के हों, मुसलमानों के विकास के लिए बातें तो करते हैं, लेकिन अमल नहीं करते.

सरकार कहती है कि मुसलमानों को रिजर्वेशन देने के लिए संसद में सर्वसम्मति की ज़रूरत है. तो क्या सरकार जो भी बिल पास कराती है, उसमें सभी पार्टियों की सहमति होती है? क्या भारत-अमेरिका परमाणु संधि में सभी पार्टियों की सहमति थी? क्या महिला आरक्षण बिल को लेकर सभी दलों में सहमति है? फिर भी सरकार ने क़दम उठाया, बिल को पेश किया. लेकिन जब बात ग़रीब और पिछड़े मुसलमानों के विकास की होती है तो हर सरकार बहाना ढूंढने लग जाती है. सोचने वाली बात यह है कि जब मुसलमानों से जुड़ा भावनात्मक मामला आता है तो देश में ज़बरदस्त आंदोलन शुरू हो जाता है. यह अच्छी बात है. लेकिन जब इन्हीं मुसलमानों के लिए रोज़गार, शिक्षा और विकास की बात आती है तो पता नहीं क्यों, लोगों को सांप सूंघ जाता है. बाबरी मस्जिद की शहादत की बात को ही ले लीजिए. देश की सारी सेकुलर पार्टियां एक हो गईं. हिंदू हो या मुसलमान, समाज के रहनुमा सड़कों पर उतर आए. भाजपा और आरएसएस के ख़िलाफ़ देशव्यापी आंदोलन शुरू हो गया, लेकिन यही लोग सच्चर कमेटी और रंगनाथ मिश्र कमीशन की रिपोर्ट पर चुप्पी साध कर बैठ गए हैं.

देश के सामने एक गंभीर ख़तरा मंडरा रहा है. प्रजातंत्र ख़तरे में है, लेकिन इस खतरे का आभास न तो सरकार को है और न ही राजनीतिक दलों को. समाज में फैली असमानता को चिन्हित करने और उसके उपाय निकालने के बजाय देश चलाने वाले चुप हैं या फिर इस मसले को टालने का फैसला कर लिया गया है. इस ख़तरे की वजह है मुसलमानों का पिछड़ापन, उनकी बेरोज़गारी और अशिक्षा. मुसलमानों की हालत साल दर साल बदतर होती जा रही है. एक तरफ राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ और भाजपा जैसी पार्टियों से ख़तरा है तो दूसरी तरफ वे दल हैं, जो मुसलमानों को वोटबैंक समझ कर इस्तेमाल तो करते हैं, लेकिन उनकी रोज़मर्रा की समस्याओं को हल करने के बजाय टालमटोल का खेल खेलते हैं. एक तरफ अमेरिका और यूरोप की सरकारें मुसलमानों को आतंकी क़रार देने में जुटी हैं तो दूसरी तरफ आर्थिक नीति और महंगाई ने मुसलमानों के हौसले को तोड़ कर रख दिया है. एक तरफ सच्चर कमेटी और रंगनाथ कमीशन की रिपोर्ट है, जो मुसलमानों के लिए आशा की किरण बनकर सामने आती है तो दूसरी तरफ इन रिपोर्टों को ठंडे बस्ते में डालने वाली सरकार. मुसलमान हर तरफ से नुकसान ही झेल रहा है. यह नुकसान सिर्फ़ मुसलमानों का नहीं है, यह देश की प्रजातांत्रिक व्यवस्था के आधार और विचार को चुनौती दे रहा है. यह चुनौती भारत में प्रजातंत्र की साख को ख़त्म करने की ताक़त रखती है. समझने वाली बात यह है कि जिस व्यवस्था में अल्पसंख्यकों के अधिकार, सत्ता में उनकी हिस्सेदारी और विकास सुनिश्चित नहीं हैं, वह प्रजातंत्र के नाम पर धोखा है. सत्य तो यह है कि आज सिर्फ़ मुसलमान ही नहीं, हमारा प्रजातंत्र भी ख़तरे में है.

manish@chauthiduniya.com

बेसहारा एवं निर्धन विजय रानी ने हिम्मत नहीं हारी. वह 29 मई एवं 5 जून 2007 को तहसील दिवस के मौक़े पर आला अधिकारियों से मिली. 9 जून को भूमाफिया प्रकोष्ठ के प्रभारी अधिकारी को भी एक पत्र लिखकर मामले से अवगत कराया गया.

दबंगों के दमन से पीड़ित महिला ने चौथी दुनिया को लिखा पत्र

भरोसे का हलफ़नामा

चौथी दुनिया को एक शिक़ायती पत्र मिला है शपथपत्र के रूप में, जिसे भेजा है कानपुर (उत्तर प्रदेश) से विजय रानी नामक महिला ने. इसमें उसने बयां की है अपनी दर्दभरी कहानी, इस उम्मीद के साथ कि शायद उसकी बात इस अख़बार में छप जाए और उसे न्याय मिल सके. यह शिक़ायती पत्र साबित करता है कि लोगों का अब शासन-प्रशासन नामक व्यवस्था पर कोई विश्वास नहीं रह गया है. वजह, अफसरों ने जन शिक़ायतों पर तो दूर, अदालती आदेशों-निर्देशों पर भी ध्यान देना छोड़ दिया है.

महेंद्र अवधेश

पति ने अपना मानसिक संतुलन क्या खोया, विजय रानी की मानों क़िस्मत ही रूठ गई. दबंगों की गिद्धदृष्टि उसकी संपत्ति पर आकर टिक गई. पहले उन्होंने उसके नाबालिग बेटे को बरगलाया, फिर पति बेचेलाल को बहला-फुसला कर अगवा कर लिया और उसकी आधी ज़मीन अपने नाम बैनामा करा ली. यही नहीं, बाद में नाबालिग बागी बेटे ने अपना हिस्सा भी दबंगों को बेच दिया. मानसिक रूप से असामान्य पति, बड़े बेटे और जवान बेटी के साथ विजय रानी पिछले चार वर्षों से न्याय पाने के लिए इधर से उधर भटक रही है, लेकिन उसकी आवाज़ नक्कारखाने में तूती की आवाज़ की तरह दबकर रह गई है. विजय रानी उत्तर प्रदेश की औद्योगिक महानगरी कानपुर की बिल्हौर तहसील अंतर्गत थाना चौबेपुर के ग्राम गबड़हा की रहने वाली है. पति बेचेलाल ने 13 मार्च 2006 को अचानक अपना मानसिक संतुलन खो दिया था. आज भी उनका इलाज मनोचिकित्सक डॉ0 महेंद्र सिंह की देखरेख में चल रहा है.

बस फिर क्या था, गांव के दबंग कमलेश कुमार कनौजिया की नज़र बेचेलाल की बेशकीमती ज़मीनों पर टिक गई. उसने पहले घर के कमउम्र-नाबालिग बेटे जितेंद्र को भड़काया और फिर उसकी मदद से अपने आदमियों के ज़रिए 24 मई 2006 को खेत में टहल रहे बेचेलाल को उठवा लिया. कई दिनों तक यहां-वहां कैद रखने के बाद उसने बेचेलाल की आधी ज़मीन अपने और आधी ज़मीन जितेंद्र के नाम बैनामा करा ली. इधर पति के लापता होने से हैरान-परेशान विजय रानी ने 26 मई को थाना चौबेपुर पुलिस को सूचना दी. साथ ही वरिष्ठ पुलिस अधीक्षक कानपुर नगर को भी रजिस्टर्ड डाक द्वारा अवगत कराया. दस दिनों तक टालमटोल करने के बाद पुलिस ने अचानक बेचेलाल की बरामदगी दिखाकर उसे छोड़ तो दिया, लेकिन उसने नामजद लोगों के ख़िलाफ़ कार्रवाई करने की कोई ज़रूरत नहीं समझी. पुलिस द्वारा कोई कार्रवाई न होते और ज़मीन हाथ से जाते देख विजय रानी ने इस संदर्भ में न्यायालय सिविल जज जूनियर डिवीज़न में एक वाद दाख़िल कर दिया. यह देख कमलेश एवं उसके साथियों ने विजय रानी के परिवार को तरह-तरह से परेशान करना और धमकाना शुरू कर दिया.

उधर सिविल जज जूनियर डिवीज़न के यहां चल रहे वाद में अदालत ने 7 अगस्त 2006 को स्थगनादेश दिया कि भूमि आराजी संख्या 370 (अ) रकबा 0.019 हेक्टेयर, आराजी संख्या 370 (ब) रकबा 0.946 हेक्टेयर एवं आराजी संख्या 465 रकबा 1.049 पर विजय रानी और उसके परिवार के क़ब्ज़े व दख़ल में हस्तक्षेप न किया जाए, न ही कोई अन्य क़ब्ज़ा करे और न ही भूमि उपरोक्त का क्रय-विक्रय किया जाए. बावजूद इसके कमलेश, कन्हैया लाल, चंद्रपाल, रंजीत सिंह एवं ख़ुद बेचेलाल के बागी नाबालिग बेटे जितेंद्र ने विवादित खेत पर क़ब्ज़ा कर लिया और वहां निर्माण कार्य शुरू करा दिया. विरोध और आला अफसरों से शिक़ायत करने पर 10 दिसंबर 2006 को विजय रानी एवं उसके बड़े बेटे महेंद्र को घेरकर उक्त दबंगों ने पहले मारा-पीटा और फिर मुक़दमा वापस न लेने पर जान से मारने की धमकी दी. विजय रानी ने पुलिस को इसकी सूचना लिखित रूप से दी, लेकिन इस बार भी इलाकाई पुलिस हाथ पर हाथ धरे बैठी रही. दबंगों से आतंकित विजय रानी इधर से उधर भागती रही और प्रशासन ने उसकी कोई सुनवाई नहीं की. यह देख कमलेश एवं उसके साथियों के हौसले बढ़ते चले गए. दो माह बाद उन्होंने एक बार फिर 15 फरवरी 2007 को विजय रानी, उसकी पुत्री एवं महेंद्र को अपने एक अन्य खेत से राई की फ़सल काटकर लाते समय घेर लिया और मुकदमा वापस लेने का दबाव बनाने की कोशिश की. इंकार करने पर कमलेश आदि ने तीनों को जमकर पीटा. घबराई विजय रानी एक बार फिर पुलिस की चौखट पर गई, लेकिन थाना चौबेपुर पुलिस ने उसकी एक न सुनी. इस पर उसने एक मार्च 2007 को एसएसपी कानपुर को एक रजिस्टर्ड पत्र भेजकर सुरक्षा की गुहार की, लेकिन उसे यहां से भी निराशा ही हाथ लगी. पुलिस से निराश विजय रानी इस मामले को भी लेकर अदालत जा पहुंची. 17 मार्च 2007 को उसने एक अन्य वाद दाख़िल कर दिया. अदालत ने पुलिस को रिपोर्ट दर्ज करने के निर्देश दिए, लेकिन इलाकाई पुलिस ने ध्यान नहीं दिया. इसी बीच प्रदेश में बसपा की सरकार आ गई. मुख्यमंत्री मायावती के कड़े तेवरों से वाक़िफ़ पुलिस ने आनन-फानन में कमलेश कुमार कनौजिया एवं उसके साथियों नन्हा, दीपक आदि के ख़िलाफ़ मुक़दमा तो दर्ज कर लिया, लेकिन गिरफ़्तारी फिर भी नहीं की. उधर उक्त दबंग लोग विजय रानी और उसके परिवार को लगातार धमकाते रहे.

भारतीय गैर न्यायिक

भारत

दस रुपये रु.10

TEN RUPEES Rs.10

सत्यमेव जयते

INDIA

INDIA NON JUDICIAL

उत्तर प्रदेश UTTAR PRADESH 88AA 224195

सेवा में,

श्रीमान् चौथी दुनिया

नोएडा

विषय – प्रार्थिनी के विकृत चित्रपति के अपहरण कर बहला फुसला कर आतंकित करके जोर जबरदस्ती बैनामा करा कर प्रार्थिनी को व उसके परिवार को बरबाद व तबाह कर नेस्तनाबूत होने से रोकने के सम्बन्ध में।

महोदय,

निवेदन है कि मै प्रार्थिनी श्रीमती विजयरानी पत्नी श्री बेंचेलाल निवासी ग्राम व पो0 गबड़हा विकास खण्ड चौबेपुर तहसील बिल्हौर जिला कानपुर नगर की मूल निवासिनी हूँ। मै आपके समक्ष तत्काल विधिक कार्यवाही हेतु अपना प्रार्थना पत्र प्रस्तुत कर रही हूँ। प्रार्थिनी निम्नलिखित निवेदनशील है : –

1– यह कि प्रार्थिनी के पति बेचेलाल पुत्र स्व0 रामकुमार निवासी गबड़हा थाना चौबेपुर तहसील बिल्हौर जिला कानपुर नगर जो कि विगत 13/03/2006 से समानसिक रुप से असन्तुलित हो गये थे। जिनका इलाज डा0 महेंन्द्र सिंह माइण्ड हास्पिटल मानसिक एवं सेक्स रोग विशेषज्ञ के यहाँ बराबर चल रहा है।

क्रमशः......2

बेसहारा एवं निर्धन विजय रानी ने हिम्मत नहीं हारी. वह 29 मई एवं 5 जून 2007 को तहसील दिवस के मौक़े पर आला अधिकारियों से मिली. 9 जून को भूमाफिया प्रकोष्ठ के प्रभारी अधिकारी को भी एक पत्र लिखकर मामले से अवगत कराया गया. इस बार उसके पति बेचेलाल एवं पुत्र महेंद्र के बयान भी हुए, लेकिन कार्रवाई कुछ भी नहीं हुई. 21 जून को विजय रानी ने मंडलायुक्त, डीएम, एसएसपी एवं अन्य आला अधिकारियों को रजिस्टर्ड शिक़ायती पत्र भेजे, लेकिन कहीं से उसे अपने लिए हमदर्दी के दो शब्द नहीं मिले. उसने 3 जुलाई 2007 को कमलेश कनौजिया आदि के ख़िलाफ़ डीएम, एसएसपी एवं भूमाफिया प्रकोष्ठ के प्रभारी को एक बार फिर पत्र लिखे. नतीजा इस बार भी शून्य रहा.

इधर निचली अदालत द्वारा जारी किए गए स्थगनादेश को ख़ारिज कराने के लिए विपक्षियों ने हाईकोर्ट में अपील कर दी. इस पर हाईकोर्ट ने 13 अक्टूबर 2009 को आदेश दिया कि संबंधित भूमि पर विजय रानी आदि के दख़ल-क़ब्ज़े में कोई अन्य हस्तक्षेप न करे और न ही उसका क्रय-विक्रय किया जाए. हाईकोर्ट के इस आदेश की जानकारी नायब तहसीलदार समेत अन्य सभी संबंधित अधिकारियों को दी गई. बावजूद इसके 22 दिसंबर 2009 को नायब तहसीलदार ने जितेंद्र कुमार के नाम उसके पिता बेचेलाल द्वारा कथित रूप किए गए बैनामे को सही मानते हुए ज़मीन का दाख़िल ख़ारिज कर दिया. तबसे विजय रानी इस आशय की जानकारी मुख्यमंत्री से लेकर इलाकाई पुलिस तक कई बार दे चुकी है, लेकिन आज तक उसकी कोई सुनवाई नहीं हुई. इसी बीच 13 मई 2010 को जितेंद्र कुमार ने अपने नाम कथित रूप से बैनामा हुई जमीन रंजीत सिंह नामक शख्स को बेच दी. बकौल विजय रानी, खेतों के अलावा उसके पास आय का और कोई ज़रिया नहीं है. उसे अपनी बेटी का ब्याह भी करना है. यदि उसे अपने खेत वापस नहीं मिले तो उसके सामने सामूहिक आत्महत्या के अलावा और कोई चारा शेष नहीं बचेगा. पूरी उम्मीद के साथ 4 जून 2010 को एक बार फिर उसने अपना शिक़ायती पत्र चौथी दुनिया समेत शासन-प्रशासन के आला अधिकारियों को भेजा है कि शायद अब भी कहीं से कोई हाथ उसकी मदद के लिए उठ जाए और उसका परिवार बर्बाद होने से बच सके.

m_awdhesh@chauthiduniya.com

देश का पहला इंटरनेट टीवी

तीन महीने में रचा इतिहास

- हिन्दी की सबसे पॉपुलर वेबसाइट
- हर महीने 12,00,000 से ज़्यादा पाठक
- हर दिन 40,000 से ज़्यादा पाठक
- स्पेशल प्रोग्राम-भारत का राजनीतिक इतिहास
- समाचार-राजनीति, खेल, पर्यावरण, मनोरंजन
- संगीत और फ़िल्मों पर विशेष कार्यक्रम
- साई की महिमा

www.chauthiduniya.tv

एफ-2, सेक्टर-11, नोएडा-201301

हिंदुओं और मुसलमानों ने मिलकर यह निर्णय लिया है कि अब समय आ गया है कि सीपीएम को उखाड़ फेंकना है. दिस इज वेरी गुड साइन.

सीपीएम को सत्ता में रहने का अधिकार नहीं : सुल्तान अहमद

फोटो-प्रभात पाण्डेय

पश्चिम बंगाल के हालिया स्थानीय निकाय चुनावों के परिणामों से तृणमूल कांग्रेस ख़ासी गदगद है. अब उसकी नज़र राज्य विधानसभा पर है. नेता, कार्यकर्ता और समर्थक पूरे जोश के साथ अपने लक्ष्य को हासिल करने के लिए जुट गए हैं. पार्टी के क़द्दावर नेता सुल्तान अहमद केंद्र में पर्यटन राज्यमंत्री हैं. वह एक बेबाक वक्ता भी हैं. पिछले दिनों हमारे समन्वय संपादक मनीष कुमार ने विभिन्न राजनीतिक मुद्दों पर उनसे एक लंबी बातचीत की. पेश हैं बातचीत के प्रमुख अंश:

▶ पश्चिम बंगाल में तृणमूल कांग्रेस की शानदार जीत हुई. इसकी सबसे बड़ी वजह यह है कि वहां मुसलमानों ने आपका समर्थन किया और साथ खड़े रहे. क्या कारण है कि उन्होंने वामपंथियों का साथ छोड़ दिया और आपके साथ आ गए?

देखिए, पश्चिम बंगाल के आज के हालात यही हैं. सीपीएम ने मुसलमानों को 34 साल तक वोटबैंक की तरह इस्तेमाल किया. मुसलमानों को यह मालूम हो चुका है कि सिवाय ज़ुबानी जमा ख़र्च के सीपीएम ने उनके लिए कुछ नहीं किया. उन्होंने फ़ैसला कर लिया है कि अब सीपीएम को उसके आख़िरी अंजाम तक पहुंचा देना है. अल्पसंख्यकों और हिंदू भाइयों के मन में भी सीपीएम के ख़िलाफ़ नफ़रत की लहर चली है. यह जो कांबिनेशन बना है, वह आपको पूरे देश में कहीं नहीं मिलेगा. हिंदुओं और मुसलमानों ने मिलकर यह निर्णय लिया है कि अब समय आ गया है कि सीपीएम को उखाड़ फेंकना है. दिस इज वेरी गुड साइन. बाक़ी जो ग़रीब तबका है, चाहे वह हिंदू है या मुसलमान अथवा निचली जाति का है, उसने तय कर लिया है कि अब सीपीएम के साथ तो एकदम जाना ही नहीं है. उसने यह मान लिया है कि सीपीएम ने उसके साथ धोखा किया है, नाइंसाफ़ी की है, बच्चों के साथ खिलवाड़ किया है, तालीम के साथ खिलवाड़ किया है, सामाजिक न्याय नहीं किया, आदि तमाम चीज़ें सामने आ गई हैं. हमारे जो किसान हैं, बंगाल में वे हिंदू हैं और मुसलमान भी. उन्होंने भी यह समझ लिया है कि सीपीएम ने जो किसानों की सियासत की है, वह बेकार पड़ गई है. यह संदेश सिर्फ़ बंगाल के लिए नहीं है, पूरे देश के लिए है. जनता को यह संदेश जाना चाहिए कि ग़रीब तबका, वह चाहे हिंदुओं में हो, मुसलमानों में हो, अगर एक हो जाए तो किसी भी हुकूमत को उखाड़ फेंकने की ताक़त उसमें है. अब सीपीएम की हालत यह है कि उसने आरएसएस और बीजेपी से हाथ मिलाना शुरू कर दिया है.

▶ दूसरे राज्यों के मुक़ाबले बंगाल के मुसलमान कुछ ज़्यादा ही पिछड़े हैं, ऐसा क्यों?

वे इसलिए पीछे नज़र आ रहे हैं, क्योंकि असम के बाद बंगाल में जनसंख्या के हिसाब से 36 फ़ीसदी मुसलमान हैं. जबकि 33 प्रतिशत मतदाता हैं. बंगाल में यह जो 36 फ़ीसदी आबादी अल्पसंख्यकों की है, वह महत्वपूर्ण है. मुसलमान नाराज़ हो गए तो समझिए कि आपकी एक चौथाई जनसंख्या नाराज़ हो गई.

▶ जब इतनी जनसंख्या है और वह इतनी महत्वपूर्ण है, फिर भी मुसलमानों का विकास नहीं हो पा रहा है. क्या सीपीएम ने इनके लिए कभी कोई विशेष नीति या योजना बनाई?

देखिए, जस्टिस सच्चर की रिपोर्ट आई. बुद्धदेव भट्टाचार्य ने कहा कि ऐसा कुछ भी नहीं है, हम लोगों ने बहुत कुछ किया मुसलमानों के लिए. लेकिन जब मुसलमान ख़ुद इस रिपोर्ट को पढ़ने लगे और चर्चा हुई, तब उनकी आंखें खुल गईं. उन्हें लगा कि जस्टिस सच्चर और रंगनाथ मिश्र जो कह रहे हैं, क्या वाकई उनकी हालत वैसी है. जस्टिस सच्चर ने कहा कि दलित से भी ज़्यादा मुसलमानों की हालत ख़राब है बंगाल में. फिर सीपीएम ने यह कहने के बजाय कि हमसे ग़लती हो गई है, यह कहना शुरू कर दिया कि जस्टिस सच्चर की रिपोर्ट ग़लत है. इस बात से भी लोग चौंके. उसके बाद सीपीएम ने यह कहना शुरू किया कि एक महीने के अंदर एक करोड़ मुसलमानों को नौकरी देंगे. यह सब बकबास है. आज जब उनके जाने का टाइम आ गया है, उनकी हुकूमत जाने वाली है, सीपीएम अब भी फुसलाने वाली सियासत कर रही है.

▶ तृणमूल कांग्रेस यूपीए में साझीदार है, स्थानीय चुनाव में आप लोग कांग्रेस के साथ मिलकर चुनाव नहीं लड़े और चुनाव परिणाम आने के बाद आप फिर एक साथ होंगे. जनता के बीच इस बात का क्या संकेत जाएगा?

ठीक है. हमने 2009 के चुनाव में समझौता किया था. हमने कांग्रेस के साथ मिलकर चुनाव लड़ा था. लेकिन कांग्रेस का जो बड़े भाई वाला रवैया है, वह बंगाल में लोग मानने के लिए तैयार नहीं हैं. इसलिए कि बंगाल की जनता ने ममता बनर्जी को अपना नेता मान लिया है. वह चाहती है कि कांग्रेस उनके साथ चले, लेकिन यहां अगर कांग्रेस डॉमिनेंट करना चाहे तो यह नहीं चलेगा. कांग्रेस है, रहे, हम साथ देने के लिए तैयार हैं. यूपीए में हैं, रहेंगे. अभी भी हम लोग डॉ. मनमोहन सिंह, सोनिया गांधी का साथ देने के लिए तैयार हैं. हमारी लीडर ममता बनर्जी ने बार-बार यह संकेत दिया है कि हम लोग यूपीए में थे, यूपीए में रहेंगे. लेकिन अगर कांग्रेस का रवैया बड़े भाई वाला है तो हम दिल्ली में साथ देंगे, पर बंगाल तृणमूल कांग्रेस का है, ममता बनर्जी का है, उन्हें साथ देना पड़ेगा. पर कांग्रेस की मंशा यही है कि सीपीएम को भी ख़ुश रखें और तृणमूल को भी ख़ुश रखें. यह सियासत न बंगाल की जनता मानेगी और न ही ममता बनर्जी.

▶ आपने सच्चर कमेटी और रंगनाथ मिश्र आयोग की रिपोर्ट की बात की, *चौथी दुनिया* ने सबसे पहले रंगनाथ रिपोर्ट को सार्वजनिक किया. नतीजतन, लोकसभा में इसे पेश किया गया. चुनाव में आप किस तरह इस मुद्दे को उठाने वाले हैं?

चुनाव तो अलग चीज़ है. हम लोगों ने यूपीए से कहा है कि जस्टिस सच्चर और रंगनाथ मिश्र की रिपोर्ट को संसद में लाकर उस पर बहस करके इसे इंप्लीमेंट भी करें. उस पर चर्चा करके उसमें जो चीज़ें लेने की हैं, जो रिज़र्वेशन और बाक़ी चीज़ें हैं, उन्हें इंप्लीमेंट करके रिपोर्ट को स्वीकार करें.

▶ तृणमूल कांग्रेस कभी बीजेपी की भी दोस्त हुआ करती थी, क्यों दोस्ती टूट गई?

हमारी दोस्ती भी मजबूरी की दोस्ती थी. इसलिए कि बंगाल में कांग्रेस और सीपीएम साथ थे. सीपीएम को तीस साल शासन करने का जो मौक़ा मिला है, वह कांग्रेस की वजह से हुआ है. कांग्रेस ने वहां कभी भी एंटी सीपीएम को महत्व नहीं दिया. आज के माहौल में कांग्रेस को सीपीएम के ख़िलाफ़ एक स्टैंड लेना चाहिए था. ग़रीबों, किसानों और अल्पसंख्यकों के प्रति सीपीएम की जो नीति और विचार हैं, वे आरएसएस और बीजेपी से कम नहीं हैं. बीजेपी और आरएसएस का एक ही एजेंडा है कि देश के अंदर मुसलमानों को उंगलियां दिखाओ, उनको छोटा करो, उनके ख़िलाफ़ ज़हर उगलो और हमेशा उन मुद्दों को ज़िंदा रखो, जिससे मुल्क में फिरकापरस्ती की हवा गर्म रहे. सियासत की रोटियां सिंकती रहें. उस समय हम लोग बीजेपी में गए थे, ताकि सीपीएम की मुख़ालफ़त कर सकें. लेकिन फिर देखा गया कि बीजेपी भी सीपीएम के साथ मिली हुई है. 2009 में कांग्रेस के साथ आने का फ़ैसला बहुत बड़ा था. 2008 में यूपीए सरकार को गिराने के लिए बीजेपी ने सीपीएम के साथ हाथ मिलाकर पार्लियामेंट में वोट दिया. उसके बाद ही हम लोगों ने निर्णय लिया कि कांग्रेस पार्टी सीपीएम को पछाड़ चुकी है.

> **सीपीएम की आइडियोलॉजी हैं कि कैसे अपनी पार्टी, जो मल्टीनेशनल कंपनी है, को मज़बूत करें. अवाम को नुक़सान पहुंचा कर, जनता को नुक़सान पहुंचा कर. सीपीएम का यही हाल है. त्रिपुरा में, केरल में भी यही हाल है. लेकिन बंगाल के लोगों ने इसमें लीड किया है. आगे भी दूसरी जगहों पर यही हाल देखेंगे. इनकी आइडियोलॉजी जनता को दबा कर, आवाज़ ख़त्म करके वन पार्टी जैसा रूल करना है.**

▶ बंगाल में जनता सीपीएम सरकार से परेशान है, लेकिन सीपीएम की जो छवि पूरे देश में है, वह यह है कि बंगाल की सीपीएम सरकार बाक़ी राज्य सरकारों से बेहतर काम कर रही है.

सीपीएम एक मल्टीनेशनल कंपनी जैसी चलती है. उसके पास मनी पावर, मसल पावर और मीडिया पावर है. उसके कई-कई चैनल काम कर रहे हैं. तो प्रोपेगेंडा में वह काफी मज़बूत है. इसके अलावा दिल्ली में जो भी सरकार बनती है, वह सीपीएम सरकार के साथ एक समझौते में आ जाती है. चाहे वह एनडीए की सरकार हो या यूपीए की. तो यह एडवांटेज सीपीएम ने 34 साल लिया है. पिछली लोकसभा में उनकी तादाद 50 से ऊपर रही, इस बार वाममोर्चा गिरकर 34 पर आ गया है. तो यह तो फ़र्क़ हुआ है. बंगाल में गिरावट के बाद पूरे मुल्क के लोग अब जानना चाहते हैं कि सीपीएम की गिरावट की क्या वजह है. जब वे इस पर ध्यान देंगे तो समझ में आएगा कि सेंट्रल गवर्नमेंट के करोड़ों-अरबों रुपये लेकर भी बंगाल के गांवों की कोई तरक़्क़ी नहीं हुई है. बंगाल में कोई नई इंडस्ट्री नहीं आई है. किसी जमाने में यह कहा जाता था कि एजुकेशन में बंगाल पहले नंबर पर है. आज ऑल इंडिया रेटिंग में बंगाल 17वें नंबर पर चला गया है. आज बिहार में नीतीश कुमार जो कर रहे हैं, उड़ीसा में नवीन पटनायक कर रहे हैं, उसके आसपास भी बंगाल नहीं है. अब पूरे देश के सामने यह बात आ जाएगी कि कितने दिनों तक इन लोगों ने प्रोपेगेंडा किया है, प्रोपेगेंडा मशीनरी को मज़बूत किया है, लेकिन वहां की जनता के हित में कुछ नहीं किया.

▶ तृणमूल पर आरोप लगाया जा रहा है कि वह माओवादियों के साथ है. माओवादियों के प्रति आप लोगों की क्या विचारधारा है?

हम लोग तो यह समझते हैं कि माओवाद और मार्क्सवाद दोनों एक ही सिक्के के दो पहलू हैं. आज भी जो इलाक़ा माओवादियों का है, वहां न हमारी इलेक्टेड पंचायत है, न पंचायत समिति है, न म्युनिसपलिटी है, न एमएलए है, न कोई एमपी है. तो इसका मतलब है कि लगातार 34 साल तक माओवादी और मार्क्सवादी साथ मिलकर मार्क्सवादियों को वहां चुन रहे थे. हमारी कोई पॉलिटिकल आइडेंटिटी वहां नहीं है. तमाम पंचायतों पर अगर सीपीएम का क़ब्ज़ा रहा है तो इसका मतलब है कि वहां सीपीएम को माओवादियों का समर्थन मिलता रहा है. अगर ऐसे इलाक़े से टीएमसी या कांग्रेस के बजाय सीपीएम के एमएलए और एमपी जीतते हैं तो इसका मतलब है कि वहां दोनों ने मिलकर अपना प्रतिनिधि चुना है. यह तो खुली बात है कि माओवादियों को सीपीएम ने इस्तेमाल किया है. अब माओवादी चाहते हैं कि सीपीएम के हाथ से हुकूमत निकल जाए. अब हम वहां अपना राज क़ायम करेंगे. हम लोगों ने देखा है कि ग़रीबों के लिए केंद्र से जो फंड आता है उसे कैसे सीपीएम वाले ख़ुद गुल कर जाते हैं. आदिवासी क्षेत्रों में डेवलपमेंट अब तक नहीं हुआ है. ग़रीबी अब तक है. लोगों को दो वक़्त का खाना नहीं मिलता है. लोग पत्ते खाकर अपना दिन गुज़ारते हैं. जिस्म पर कपड़े नहीं हैं. अब लोगों की आंखें खुल गई हैं. माओवाद के बारे में हम लोगों ने कहा है कि इन लोगों ने ग़रीबों का शोषण किया है. फिर आज अगर हम यह कहें कि आप बमबारी करके इनको ख़त्म कर दीजिए तो ज़बरदस्त विरोध होगा. हम लोग बमबारी के ख़िलाफ़ हैं. हम लोग चाहते हैं कि इस समस्या का राजनीतिक समाधान निकाला जाए. हमारी हमदर्दी उन इलाक़ों की जनता के साथ है, माओवादियों के साथ नहीं. वहां के लोग पहले सीपीएम के बंधक थे और अब माओवादियों के बंधक बन चुके हैं. जनता को आज़ादी मिलनी चाहिए, विकास होना चाहिए. माओवाद और मॉर्क्सवाद पॉलिटिकली एक ही नाव में सवार हैं.

▶ एक और बात मीडिया और देश में भी फैलाई जा रही है कि तृणमूल कांग्रेस एंटी इंडस्ट्री है, एंटी बिजनेस है. अगर सरकार बन गई तो बिजनेसमैन भाग जाएंगे.

यह एकदम ग़लत बात है. बंगाल में 34 साल में कोई इंडस्ट्री नहीं आई. आप यह बात नैनो फैक्ट्री को लेकर कह रहे हैं. उससे पहले बता दूं कि यहां बड़ी-बड़ी इंडस्ट्रीज बंद हो गईं. जूट इंडस्ट्री बंगाल की प्राइम इंडस्ट्री है. टी इंडस्ट्री बंगाल की प्राइम इंडस्ट्री थी. जिस तरह से उसका एक्सपेंशन होना था, वह नहीं हुआ. इंजीनियरिंग इंडस्ट्री बंगाल की नंबर वन इंडस्ट्री थी. हावड़ा को शेफिल्ड ऑफ इंडिया कहा जाता था. एक-एक करके वामपंथियों ने इसे बंद किया. ग़लत ट्रेडिंग करके बंद करवाया. वर्कर्स को ग़लत रास्ता दिखाकर, जनरल मैनेजर का ख़ून करके, डायरेक्टरों पर हमला कराकर बंद करा दिया. यह इतिहास है बंगाल से इंडस्ट्री हटने का. हम टाटा के ख़िलाफ़ थे. टाटा नौ सौ एकड़ में इंडस्ट्री खोलना चाहती थी, लेकिन उस इंडस्ट्री के लिए तीन सौ एकड़ की ही ज़रूरत थी. हमारा स्टैंड था कि तीन सौ एकड़ ले लो, पर ज़बरदस्ती किसानों से छह सौ एकड़ और न लो. हम टाटा या नैनो के ख़िलाफ़ नहीं थे. यह भी बुद्धदेव जी की सरकार के लिए नाक की लड़ाई थी. हमारी ईमेज इंडस्ट्री के ख़िलाफ़ बना दी गई.

▶ आजकल कुछ और भी तस्वीरें उभर कर आ रही हैं. बंगाल के जो ग्रामीण इलाक़े हैं, वहां लोग खुलेआम गोलियां खा रहे हैं.

यह तो सीपीएम की वजह से है. लगातार 34 साल तक सीपीएम ने दबाव वाली राजनीति की है, जहां कोई जुबान नहीं खोल सकता है. सीपीएम की मनमानी इस कदर है कि लोगों को सीपीएम का अख़बार पढ़ना होगा, सीपीएम का चैनल सुनना होगा. अन्य चैनल ब्लैक आउट कर दिए गए. आप गांव में और चैनल नहीं देख सकते. तमाम केबल ऑपरेटर को बोला गया है कि सीपीएम का ही चैनल दिखाना है. तो यह हाल है. लेकिन अब सीपीएम के जाने का वक़्त हो गया है. 48 प्रतिशत वोट म्युनिसपलिटी में मिले हैं. अब सीपीएम इस ताक में है कि किस तरह कांग्रेस और तृणमूल के झंडे दबाए जाएं. तो खुलेआम लोगों पर गोलियां चलाई जा रही हैं. गांव के गांव आग के हवाले कर दिए जा रहे हैं. पठानों को लूटा जा रहा है, नौजवानों का ख़ून किया जा रहा है. इसमें भी टारगेट मुसलमान हैं, ताकि वे ख़ौफ़ में ज़िंदगी गुजारें. अस्सी प्रतिशत मुस्लिम इस टारगेट में आते हैं. हुबली और मंगलकोट के इलाक़े को ज़बर्दस्ती कंट्रोल में रखना चाह रही है सीपीएम.

▶ सीपीएम या मार्क्सवादी आइडियोलॉजिकल प्लॉट पर राजनीति करते हैं.

मैं तो यह समझता हूं कि सीपीएम की कोई आइडियोलॉजी नहीं है. पार्टी आइडियोलॉजी बनाती है अवाम के हित को सामने रखकर. सीपीएम की आइडियोलॉजी है कि कैसे अपनी पार्टी, जो मल्टीनेशनल कंपनी है, को मज़बूत करें. अवाम को नुक़सान पहुंचा कर, जनता को नुक़सान पहुंचा कर. सीपीएम का यही हाल है. त्रिपुरा में, केरल में भी यही हाल है. लेकिन बंगाल के लोगों ने इसमें लीड किया है. आगे भी दूसरी जगहों पर यही हाल देखेंगे. इनकी आइडियोलॉजी जनता को दबा कर, आवाज़ ख़त्म करके वन पार्टी जैसा रूल करना है. इनके आसपास कोई और पार्टी न हो और सब जाकर इनके आगे झुकें. सीपीआई के एमएलए रोते रहते हैं. सीपीआई के लीडर भी रोते रहते हैं. उनके यहां किसी भी वर्कर से पूछ लीजिए तो कहेंगे कि जुर्म हो रहा है. इस चुनाव में सीपीएम की जो गिरावट हुई है, वह तो पहले ही हो जानी चाहिए थी. उन्हें सरकार में रहने का अब कोई मॉरल राइट नहीं है.

▶ अभी तो बंगाल में हर तरफ़ तृणमूल की लहर चल पड़ी है.

यह लहर नहीं है, यह हमारी रणनीति है. हमने अपने प्लेटफॉर्म को मज़बूत किया है. पार्टी का फाउंडेशन हमने बनाया है. हमने लड़ाई लड़ी है नंदीग्राम, सिंगुर में. जो नाइंसाफ़ी हुई है उसके ख़िलाफ़ आवाज़ उठाई है. रिज़वान मामले की लड़ाई किसकी है? तृणमूल की है. ऐसा नहीं है कि यह आंधी है. हमने जनता की मुसीबतों, जनता की तकलीफों और जनता के दुःख-दर्द में साथ दिया है. इसलिए जनता ने यह स्वीकार किया है कि तृणमूल ही ऐसी पार्टी है, जिस पर भरोसा किया जा सकता है.

▶ तो क्या आप लोग यह चाहते हैं कि कम्युनिस्टों को सरकार में रहने का कोई मॉरल राइट नहीं है, इसलिए चुनाव जल्दी हो जाएं?

नहीं, हम ऐसा नहीं चाह रहे हैं. दरअसल काम नहीं हो रहा है, सूबा पीछे जा रहा है, एडमिनिस्ट्रेशन ख़राब हो रहा है, तमाम सीपीएम के गुंडे गुंडागर्दी कर रहे हैं. आगे चुनाव आएगा तो फ़ैसला हो ही जाएगा. लेकिन बेहया की तरह, बेशर्म की तरह ये लोग कहे जा रहे हैं कि अभी वक़्त है, सब ठीक कर लेंगे. ठीक है, उनकी मर्जी है, लेकिन हम लोग जनता से कह रहे हैं कि भाई एलेक्शन हो जाए तो अच्छा है. लेकिन गवर्नमेंट को तोड़ने या 356 जैसा कोई प्लान नहीं हैं. हम लोग यह चाहते हैं कि जनता भी पीसफुली काम करें, क्योंकि जनता ने एक विजन बना लिया है कि तृणमूल इज कमिंग, ममता बनर्जी विल बी सीएम.

▶ बंगाल के लोगों को एक डर और सता रहा है कि जो अगला चुनाव होने वाला है, उसमें बहुत ज़्यादा हिंसा होने वाली है.

देखिए, ऐसा तो सीपीएम नेता बिमान बोस भी कह रहे थे. म्युनिसपल चुनाव के पहले वायलेंस होगा, ख़ूनखराबा होगा. लेकिन ऐसा नहीं हुआ. 2009 के चुनाव में देश में क्या वायलेंस हुआ? उस वक़्त भी लोग कह रहे थे कि वायलेंस होगा. डेमोक्रेसी में जनता को अब पता चल चुका है कि उन्हें क्या करना है. बहुत होगा तो 2 या 3 फ़ीसदी इलाक़े में होगा. 2009 के चुनाव में जितने बाहुबली थे, सब सोचते थे कि जीतेंगे. क्या हुआ? इसका मतलब है कि जनता की सोच और विचार में ज़बरदस्त तब्दीली आई है. लोगों ने धर्म और जाति के नाम पर वोटिंग कराने की कोशिशें की हैं, लेकिन देश की जनता को सलाम करना चाहिए. जनता ने अपनी समझ से काम लिया है. बंगाल में भी वही होगा. बंगाल देश से अलग नहीं है.

manish@chauthiduniya.com

लोगों ने राहुल गांधी से उम्मीद लगाई थी कि वह सोनभद्र, मिर्ज़ापुर एवं चंदौली के लिए विशेष पैकेज की घोषणा करेंगे, लेकिन यहां के ग़रीबों-किसानों को सिर्फ़ निराशा ही हाथ लगी.

कैमूर की आशाओं पर खरे नहीं उतरे राहुल

शिवदास

वाराणसी-शक्ति नगर मार्ग पर स्थित मिर्ज़ापुर जनपद के अहरौराडीह गांव के लोग उस दिन ख़ासे उत्साहित थे. वजह भी ऐसी-वैसी नहीं थी, क्योंकि वहां कांग्रेस के युवराज एवं सांसद राहुल गांधी आने वाले थे. क़रीब बीस बीघे खेत में दो मंच और पंडाल बनाए गए थे. चिलचिलाती धूप में पारा 46 डिग्री सेल्सियस की हद पार कर चुका था. फिर भी सोनभद्र, मिर्ज़ापुर, चंदौली, भदोही एवं मिर्ज़ापुर के लोग और कांग्रेसजन इकट्ठा हो रहे थे. मिर्ज़ापुर, सोनभद्र और चंदौली के उपेक्षित आदिवासी भी तीर-कमान के साथ मौजूद थे. क़रीब साठ हज़ार लोग भारी सुरक्षा के बीच मंच की ओर टकटकी लगाए हुए थे. राहुल आए, ज़िंदाबाद के नारे भी लगे, उन्होंने बहुत सारी बातें भी कीं, लेकिन आम जन ने जिस बात विशेष के लिए उनका बेसब्री से इंतज़ार किया, उसके बारे में वह कुछ नहीं बोले. सोनभद्र, मिर्ज़ापुर एवं चंदौली के आदिवासियों और आम लोगों को राहुल से काफी उम्मीदें थीं. वजह, राहुल गांधी ने बीते साल बदहाल बुंदेलखंड की कलावती का दर्द लोकसभा में उठाकर पूरे विश्व का ध्यान यहां के पिछड़ेपन की ओर खींचा था. सोनभद्र, मिर्ज़ापुर और चंदौली की भौगोलिक स्थिति और समस्याएं बुंदेलखंड जैसी हैं. तीनों जनपद उत्तर प्रदेश के नक्सल प्रभावित क्षेत्रों में शुमार हैं.

सोनभद्र, मिर्ज़ापुर और चंदौली के लोगों को उम्मीद थी कि राहुल आएंगे तो उनकी भी बदहाली का मामला वैसे ही उठेगा, जैसे बुंदेलखंड का उठा था. पर ऐसा नहीं हुआ. राहुल आए, स्वागत भी ख़ूब हुआ, बातें भी ख़ूब हुईं, लेकिन वही नहीं हुआ, जिस पर आम लोगों का ध्यान टंगा था. कैमूर का मसला सियासत की खूंटी पर टांग कर राहुल चले गए...

लोगों ने राहुल गांधी से उम्मीद लगाई थी कि वह सोनभद्र, मिर्ज़ापुर एवं चंदौली के लिए विशेष पैकेज की घोषणा करेंगे, लेकिन यहां के ग़रीबों-किसानों को सिर्फ़ निराशा ही हाथ लगी. राहुल गांधी का भाषण उत्तर प्रदेश की बहुजन समाज पार्टी की सरकार को उखाड़ फेंकने के आह्वान पर केंद्रित रहा. उन्होंने कहा कि आज हिंदुस्तान में दो विचारधाराएं हैं. यहां दो तरीक़े की सरकारें चलती हैं. एक पूरे हिंदुस्तान को आग में झोकती है और एक गृहस्थी को अपना मानकर चलती है. वह चाहे ग़रीब हो, अमीर हो, पिछड़ा हो, दलित हो या आदिवासी. कांग्रेस की सरकारें सभी को साथ लेकर चलती हैं. 2004 में कांग्रेस ने दिल्ली में ऐसी ही सरकार बनाई. महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोज़गार गारंटी योजना को दुनिया का बेहतरीन कार्यक्रम क़रार देते हुए उन्होंने कहा कि वह राज्यों में गांव-गांव जाते हैं. लोग नरेगा को सबसे बेहतर कार्यक्रम मानते हैं, लेकिन उत्तर प्रदेश सरकार इसे ठीक नहीं मानती. बीते 20 सालों के दौरान उत्तर प्रदेश की राजनीति की आलोचना करते हुए राहुल ने कहा, आपने पहले धर्म की राजनीति देखी, भाजपा की सरकार आई. फिर जाति की राजनीति देखी, सपा की सरकार आई. जनता ने उसे भी बदला. फिर बीएसपी आई, उसने कहा कि दलितों की सरकार बनेगी. लेकिन उन्हें यहां दलितों की सरकार दिखाई नहीं देती. उन्होंने कहा कि उनके अनुभव तो यह कहते हैं कि यहां कोई सरकार ही नहीं है. राहुल ने आगामी विधानसभा चुनाव में बहुजन समाज पार्टी को हराने और उत्तर प्रदेश को बदलने का आह्वान किया. उन्होंने सोनभद्र में खनिज इंडस्ट्री होने के बाद भी बेरोज़गारों को रोज़गार न मिल पाने के लिए बसपा सरकार को दोषी ठहराया. साथ ही गांवों में पांच से छह घंटे बिजली आपूर्ति को लेकर भी आड़े हाथों लिया. क़रीब बारह मिनट के अपने भाषण में राहुल ने सोनभद्र, मिर्ज़ापुर एवं चंदौली के आदिवासियों, वनवासियों और ग़रीबों की आशाओं के अनुरूप कोई भी घोषणा नहीं की. राहुल गांधी को आदिवासियों की व्यथा तब भी समझ में नहीं आई, जब भुखमरी से 18 बच्चों की मौत की गवाह बन चुकी घसिया बस्ती (सोनभद्र) निवासी ग़रीब आदिवासी कतवारू ने उन्हें धनुष-तीर और टोपी भेंट की. कतवारू के माध्यम से आदिवासियों ने अपने प्रेम और आतिथ्य का प्रदर्शन किया, लेकिन एक बार फिर उन्हें कांग्रेसी युवराज से निराशा ही हाथ लगी. इतना ही नहीं, राहुल की जनसभा में शामिल होने आए सोनभद्र के आदिवासी शिवधार एवं नंदलाल को हवालात की हवा भी खानी पड़ी. परसोई निवासी शिवधार को कुछ घंटों की पूछताछ के बाद छोड़ दिया गया, लेकिन ओबरा थाना क्षेत्र के पनारी गांव के खाड़र टोला निवासी नंदलाल को 24 घंटे हवालात में बिताने पड़े. वरिष्ठ कांग्रेसी राजेशपति त्रिपाठी एवं ललितेश त्रिपाठी के कहने के बाद भी नंदलाल को नहीं छोड़ा गया. उसे छुड़ाने के लिए इंटक के ज़िलाध्यक्ष हरदेव नारायण तिवारी और छात्रनेता विजय शंकर यादव अहरौरा थाने में देर रात तक लगे रहे, लेकिन पुलिस ने एक न सुनी. आख़िरकार नंदलाल को उप ज़िलाधिकारी चुनार के सामने बांड भरना पड़ा. तब जाकर उसे छोड़ा गया. राहुल को देखने के लिए नंदलाल तीर-कमान लेकर गया था और यही उसके गुनाह बन गया. उस पर नक्सली होने का आरोप लगा दिया गया.

कैसे सुधरेगी आदिवासियों की माली हालत

भुखमरी से डेढ़ दर्जन से अधिक बच्चों की मौत की गवाह बन चुकी घसिया बस्ती निवासी कतवारू राहुल गांधी को तीर-कमान और टोपी भेंट करके भले ही मीडिया में छा गया हो, लेकिन उसके जैसे कलाकारों की हालत आज भी जस की तस है. मिट्टी की दीवार पर फूस के छाजन से बने घर में शाम का चूल्हा जल भी पाएगा कि नहीं, यह चिंता दिन-रात कतवारू सरीखे राष्ट्रीय कलाकारों को सताती रहती है. 55 वर्षीय कतवारू के परिवार में पत्नी कंचन, पुत्र महेंद्र (25), दो पुत्रियां राजकुमारी (20) एवं गीता (12) हैं. बेरोज़गार महेंद्र की शादी हो चुकी है. उसके कंधों पर पत्नी प्रभावती समेत चार लोगों की ज़िम्मेदारी है. कतवारू की छोटी बेटी कक्षा दो में पढ़ती है, लेकिन ग़रीबी के कारण उसकी पढ़ाई अक्सर बाधित होती रहती है. कतवारू पर इस समय पांच लोगों की ज़िम्मेदारी है. भूमिहीन करमा लोक कलाकार कतवारू मज़दूरी कर अपने परिवार का पेट पालता है. कहने को तो वह रौंप गांव का निवासी है, लेकिन 10 अप्रैल, 2007 को बने उसके जॉबकार्ड संख्या 31630020500231 पर उसे एक भी दिन काम नहीं मिला और न ही बेरोज़गारी भत्ता. यही हालत उसे बेटे के नाम बने जॉबकार्ड संख्या की है. कतवारू के पास अंत्योदय कार्ड है, जिसके चलते महीने में 35 किलो राशन तो मिल जाता है, लेकिन अन्य ख़र्चे उसे भारी पड़ रहे हैं. चुर्क पुलिस चौकी के मड़कुड़ी गांव से घसिया परिवार के लोगों ने आज से क़रीब दो दशक पूर्व आकर जब यह बस्ती बनाई थी, तो उस समय इनकी आंखों में आशाओं की एक चमक थी, जो आज धीमी पड़ती जा रही है.

सोनांचल संघर्ष वाहिनी के संयोजक रोशनलाल यादव घसिया बस्ती के आदिवासियों को उनका हक़ दिलाने के लिए कोशिश कर रहे हैं. राहुल गांधी को तीर-कमान और टोपी भेंट करने का विचार रोशन लाल के दिमाग़ की उपज थी, ताकि राहुल गांधी के पास सोनभद्र के आदिवासियों की आवाज़ पहुंच सके. इस योजना को मूर्त रूप देने के लिए कोन थाना क्षेत्र के पड़रछ गांव निवासी राम नरेश चेरो ने धनुष-तीर का निर्माण किया था. आदिवासी टोपी चोपन ताना क्षेत्र के पटवध गांव निवासी मुन्ना धइकार ने बनाई थी. सोनभद्र में कई कलाकार मौजूद हैं, जिनकी माली हालत खस्ता है. झूमर नृत्य की राष्ट्रीय स्तर की कलाकार 65 वर्षीय रुकमनिया की हालत भी कतवारू सरीखी है, लेकिन कोई भी इन सबकी ओर ध्यान देने की कोशिश नहीं कर रहा है. जबकि उक्त सारे कलाकार पूर्व प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी एवं राजीव गांधी के साथ दिल्ली में भोजन तक कर चुके हैं.

feedback@chauthiduniya.com

मेरी दुनिया.... भोपाल गैस लीक हादसा ! ...धीर

रोज़ाना हज़ारों लीटर कचरा गंगा में बहा देते हैं. बनारस में सीवेज, गंगा में अधजली लाशें या मृत शरीर बहाए जाने से भी गंगाजल अपनी स्वच्छता और निर्मलता खोती जा रही है.

ओ गंगा बहती हो क्यों

हम जिस तेज़ गति से स्खलित और प्रदूषित होते गए, मां गंगा को भी उसी रफ्तार से अपवित्र करते चले गए. गंगा का जो पानी शुद्धता का मानक हुआ करता था, आज सड़ चुका है. पीने की बात तो दूर रही, वह नहाने लायक़ भी नहीं रहा. गंगा के पानी में ऑक्सीजन की मात्रा लगातार कम हो रही है. गंगा एक्शन प्लान नाकाम है और सरकार ख़ामोश...

- गंगाजल न पीने, न नहाने लायक़
- पानी में कम हो रही है ऑक्सीजन की मात्रा
- बीओडी 3.20 से16.5 मि/ली तक
- बीओडी 3.0 मि/ली अधिकतम हो
- महज़ दो साल में 1600 करोड़ ख़र्च
- पूरे देश में रोज़ 3 करोड़ लीटर कचरा गंगा में
- कानपुर में 78 से ज़्यादा चमड़ा उद्योग
- इनसे रोज़ाना हज़ारों लीटर कचरा गंगा में
- बनारस में 40 करोड़ ली. सीवर का पानी गंगा में
- 12 फ़ीसदी बीमारियों की वजह गंगाजल

शशि शेखर

गंगा प्रतीक है एक सभ्यता की, हिमालय से लेकर बंगाल की खाड़ी तक. इसी से मिलकर बनती है गंगा–जमुनी संस्कृति. करोड़ों लोगों के जीवन की आशा है गंगा. उनकी रोज़ी और रोटी का सहारा भी है गंगा. लाखों वर्ग किलोमीटर खेतों की प्यास भी बुझाती है गंगा. लेकिन अब गंगा का पानी पीने तो दूर, नहाने लायक़ भी नहीं रहा. हज़ारों साल से जीवनदायिनी साबित होती आ रही गंगा का पानी अब सिंचाई के योग्य भी नहीं बचा. कन्नौज से लेकर कानपुर, इलाहाबाद और बनारस तक गंगा के पानी में जहां ऑक्सीजन की मात्रा घटती जा रही है, वहीं ख़तरनाक रसायनों की मात्रा बढ़ती जा रही है. बड़े–बड़े बांध और गंगा के किनारे बसे चमड़ा एवं रासायनिक कल–कारखानों से निकलने वाला कचरा गंगा के अमृत जैसे पानी को ज़हर बना चुका है. सफ़ाई के नाम पर चल रही योजनाओं ने भी गंगा को मैली बनाने में कोई कोर–कसर नहीं छोड़ी. 1985 में राजीव गांधी के प्रधानमंत्री रहते हुए गंगा एक्शन प्लान शुरू किया गया था. हज़ारों करोड़ रुपये की योजनाएं बनाई गईं.

पिछले 25 सालों के दौरान गंगा एक्शन प्लान का क्या असर रहा, यही जानने के लिए *चौथी दुनिया* ने गंगा एक्शन प्लान और गंगाजल में ऑक्सीजन की घटती मात्रा के संबंध में जांच–पड़ताल की. वन एवं पर्यावरण मंत्रालय की ओर से उपलब्ध कराए गए दस्तावेज़ों से मालूम हुआ कि सिर्फ़ 2005–2007 के दौरान गंगा की सफ़ाई के नाम पर 1600 करोड़ रुपये से ज़्यादा ख़र्च किए गए. गंगा एक्शन प्लान का पहला चरण 31 मार्च 2000 को समाप्त हो गया था, जिसमें 452 करोड़ रुपये ख़र्च हुए थे. चौथी दुनिया के पास उपलब्ध दस्तावेज़ में वन एवं पर्यावरण मंत्रालय ने यह माना है कि गंगा एक्शन प्लान–1 अपने मक़सद में सफल नहीं हो सका, इसलिए 1993 में ही गंगा एक्शन प्लान–2 शुरू किया गया. बावजूद इसके गंगा अब पहले से भी ज़्यादा प्रदूषित हो गई. ऐसे में इस आशंका को बल मिलता है कि गंगा एक्शन प्लान के नाम पर कहीं आम आदमी की गाढ़ी कमाई की बंदरबांट तो नहीं हो रही है. हरिद्वार से जैसे ही गंगा आगे बढ़ती है, इसके पानी में ऑक्सीजन की मात्रा घटनी शुरू हो जाती है. कन्नौज, कानपुर, इलाहाबाद और बनारस तक पहुंचते–पहुंचते गंगा की हालत यह हो जाती है कि इसका पानी पीने तो दूर, नहाने लायक़ भी नहीं रह जाता. बायोकेमिकल ऑक्सीजन डिमांड (बीओडी) एक जांच प्रक्रिया है, जिससे पानी की गुणवत्ता और उसमें ऑक्सीजन की मात्रा का पता चलता है. गंगाजल के बीओडी जांच के मुताबिक़, कन्नौज, कानपुर, इलाहाबाद और बनारस में बीओडी की मात्रा 3.20 मिलीग्राम/लीटर से लेकर 16.5 मिलीग्राम/लीटर तक है, जबकि यह मात्रा 3.0 मिलीग्राम/लीटर से थोड़ी भी ज़्यादा नहीं होनी चाहिए. इसी तरह इन जगहों पर गंगाजल में ऑक्सीजन भी तय मात्रा से कम है. इसका अर्थ है कि उपरोक्त जगहों पर गंगास्नान आपके जीवन के लिए ख़तरनाक साबित हो सकता है. गंगा की शुद्धि के नाम पर हज़ारों करोड़ रुपये बहा दिए गए, लेकिन गंगा की हालत जैसी 1985 में थी, वैसी अब भी है. ज़ाहिर है, उक्त हज़ारों करोड़ रुपये ठेकेदारों, अफसरों और नेताओं की जेब में चले गए.

कन्नौज एवं कानपुर में काली नदी और रामगंगा सीवेज के माध्यम से आने वाला कचरा गंगाजल को ज़हरीला बना रहा है. अकेले कानपुर में 78 से ज़्यादा ऐसे चमड़ा उद्योग हैं, जो प्रदूषण नियंत्रण निर्देशों का पालन नहीं करते और रोज़ाना हज़ारों लीटर कचरा गंगा में बहा देते हैं. बनारस में सीवेज, अधजली लाशें या मृत शरीर बहाए जाने से भी गंगाजल अपनी स्वच्छता और निर्मलता खोता जा रहा है. आंकड़ों के मुताबिक़, सिर्फ़ बनारस में ही 40 करोड़ लीटर सीवर का गंदा (मल–जल) पानी गंगा में प्रतिदिन डाला जाता है. पूरे देश की अगर बात करें तो गंगा में प्रतिदिन 2 करोड़ 90 लाख लीटर प्रदूषित कचरा गिर रहा है. एक रिपोर्ट के मुताबिक़, उत्तर प्रदेश में 12 फ़ीसदी बीमारियों की वजह सिर्फ़ गंगा का पानी है. वाराणसी में अभी गंगा नदी के अलग–अलग घाटों में फीकल कोलिफार्म की संख्या 4 लाख 90 हज़ार से लेकर 21 लाख तक है. फीकल कोलिफार्म की संख्या से पता चलता है कि पानी में हानिकारक सूक्ष्म जीवाणुओं की बड़ी संख्या मौजूद है. नतीजतन, अब गंगा का स्वरूप जीवनदायिनी नहीं रहा, बल्कि यह रोगों को जन्म देने वाली हो गई है.

गंगा करोड़ों भारतीयों की आस्था की प्रतीक भी है, सो इस पर राजनीति न हो, यह संभव नहीं. 2009 में होने वाले आम चुनाव से कुछ महीने पहले यूपीए सरकार ने गंगा को राष्ट्रीय नदी घोषित कर दिया. साथ ही गंगा को प्रदूषण मुक्त बनाने के लिए प्रधानमंत्री की अध्यक्षता में गंगा बेसिन प्राधिकरण की स्थापना की घोषणा की गई. ज़ाहिर है, यूपीए सरकार का यह भागीरथी प्रयास आम चुनाव को ध्यान में रखकर किया गया था. गंगा सदियों से भारत के करोड़ों हिंदुओं के लिए एक पवित्र नदी रही है. सो इस घोषणा के पीछे का मक़सद भी हिंदू वोटरों को लुभाना ही था. गंगा नदी को बचाने के लिए सालों से आंदोलन चल रहे हैं. गंगा पर बांध बनाए जाने का भी लोग विरोध कर रहे थे, तब यूपीए सरकार ने कोई क़दम नहीं उठाया. 1985 में राजीव गांधी द्वारा शुरू की गई गंगा कार्य योजना को सोनिया गांधी और उनकी सरकार शायद भूल चुकी हैं. लेकिन सवाल यह है कि क्या सिर्फ़ योजना या प्राधिकरण बनाकर गंगा को बचाया जा सकता है? पिछले 25 सालों में तो ऐसा संभव नहीं हो सका. ज़ाहिर है, इसके लिए एक ईमानदार प्रयास की ज़रूरत है, जिसका अभाव अब तक दिख रहा है. फिर भी गंगा को किसी भी हालत में बचाना ही होगा, क्योंकि अगर गंगा ख़त्म होगी तो हम कहां बचेंगे!

shashishekhar@chauthiduniya.com

(BOD) for 1986 and 2006 are as under:-

WATER QUALITY DATA FOR RIVER GANGA
(Summer Average i.e. March-June)

S.No.	Station/Location	BOD(mg/l)	
		1986	2006
1.	Rishikesh	1.7	1.00
2.	Hardwar D/s	1.8	1.30
3.	Garhmukteshwar	2.2	2.10
4.	Kannauj U/S	5.5	1.11
5.	Kannauj D/S	NA	4.20
6.	Kanpur U/S	7.2	6.80
7.	Kanpur D/S	8.6	6.80
8.	Allahabad U/S	11.4	4.90
9.	Allahabad D/S	15.5	3.20
10.	Varanasi U/S	10.1	2.10
11.	Varanasi D/S	10.6	2.25
12.	Patna U/S	2.0	2.05
13.	Patna D/S	2.2	2.30
14.	Rajmahal	1.8	1.95
15.	Palta	NA	2.58
16.	Uluberia	NA	2.64

Bathing Water Quality Criteria: DO equal to or more than 5.0 mg/l
BOD equal to or less than 3.0 mg/l

6. As per the official records which part of Ganga most polluted and reasons therefor. Give details.

River	Polluted Stretch	Source/Town	Critical Parameters (in mg/l)	State
Ganga	• Kannauj to Kanpur d/s	Discharge through Kalinadi & Ramganga sewage & Industrial effluent from Kannauaj and Kanpur	BOD 6-10	Uttar Pradesh
Ganga	• Varanasi d/s	Varanasi sewage & Industrial effluent	BOD 6.5- 16.5	Uttar Pradesh

साख बचाने के लिए पहल ज़रूरी

हिमालय के ग्लेशियर पिघलने की रिपोर्ट पर ग़लती मानकर नोबेल पुरस्कार प्राप्त संयुक्त राष्ट्र संघ की संस्था इंटर गवर्नमेंटल पैनल ऑन क्लाइमेट चेंज (आईपीसीसी) बुरी तरह फंस गई है. बाली में संयुक्त राष्ट्र के सदस्य सत्तर देशों के पर्यावरण मंत्रियों की बैठक में इस विषय पर गहन विचार–विमर्श हुआ. उनके बीच सहमति बनी कि डॉक्टर पचौरी की संस्था के कामकाज की समीक्षा की जाए. बैठक में कई देशों ने आईपीसीसी की रिपोर्ट की जांच स्वतंत्र पर्यावरण विशेषज्ञों से कराने की मांग की. इस बात पर भी गरमागरम बहस हुई कि अगर स्वतंत्र जांच में रिपोर्ट में ख़ामी या फिर किसी उद्देश्य विशेष के लिए ग़लत रिपोर्ट बनाने की बात सामने आती है तो डॉक्टर पचौरी की स्थिति कमज़ोर होगी और उनके इस्तीफ़े की मांग ज़ोर पकड़ सकती है.

अगर यूएनईडीपी की जांच अगस्त तक पूरी हो जाती है तो इस वर्ष अक्टूबर में कोरिया में होने वाला आईपीसीसी का वार्षिक अधिवेशन हंगामेदार होने के आसार हैं. हालांकि बैठक के पहले आईपीसीसी ने पर्यावरण शोध के क्षेत्र में ख़ामियों की बात मानकर विवाद को विराम देने की कोशिश की. भारतीय वैज्ञानिकों ने भी ऑर्कटिक के आंकड़ों के आधार पर हिमालय के ग्लेशियर पिघलने के आकलन पर पचौरी की संस्था को घेरा. नतीजा यह हुआ कि आईपीसीसी के अन्य शोध निष्कर्षों की पड़ताल शुरू हो गई. जैसे–जैसे पड़ताल आगे बढ़ती गई, पचौरी घिरते चले गए. दुनिया भर में अपनी और संस्था की आलोचना झेल रहे पचौरी को भारत सरकार से बड़ी राहत मिली थी. पहले पर्यावरण मंत्री जयराम रमेश और फिर खुद प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह ने पचौरी के समर्थन का ऐलान कर आईपीसीसी को अंतरराष्ट्रीय मंच पर बड़ी राहत दी थी, लेकिन पर्यावरण के क्षेत्र में काम कर रहे वैज्ञानिकों ने फिर भी आईपीसीसी पर अपने हमले जारी रखे. संयुक्त राष्ट्र के पर्यावरण प्रमुख एचिन स्टेनर का समर्थन भी पचौरी को आलोचना से नहीं बचा सका.

इस विवाद ने धरती के गर्म होने की थ्योरी के आधार और उसके पता करने के तरीक़ों को लेकर जारी विवाद को सार्वजनिक कर दिया. दरअसल धरती गर्म हो रही है या नहीं, इसका पता लगाने के लिए पिछले आठ सौ से लेकर हज़ार साल तक के तापमान की आवश्यकता है, लेकिन वैज्ञानिक पद्धति से रिकॉर्ड किया गया धरती का तापमान सिर्फ़ पिछले डेढ़ सौ साल का ही मौजूद है. इसलिए वैज्ञानिकों का एक धड़ा ग्लोबल वॉर्मिंग के सिद्धांत को ही सिरे से ख़ारिज़ करता है. उसका तर्क है कि पिछले हज़ार साल के तापमान का पता लगाने के लिए कुछ वैज्ञानिकों ने ट्री रिंग जैसे ग़ैर परंपरागत स्रोत का सहारा लिया है. इस तकनीक के मुताबिक़, जब पेड़ों का विकास होता है और वे बड़े होते हैं तो उनके तनों पर सालाना वलयाकार परत जमती है. इन्हें ही आधार बनाकर पिछले तापमान का पता लगाया जाता है, लेकिन यह पद्धति पूरी तरह से दोष रहित नहीं है. कई शोध परिणामों में बताया गया है कि अगर ग्रीनहाउस गैस उत्सर्जन की मात्रा में कटौती न की गई तो धरती का तापमान दो डिग्री सेल्सियस बढ़ जाएगा. इस आशंका और इसके असर को लेकर दुनिया भर में हड़कंप मचा हुआ है. एक बड़ा सवाल यह है कि आईपीसीसी किस आधार पर ग्लोबल वॉर्मिंग को दुनिया की मानवीय गतिविधियों से जोड़ रही है. वह किस आधार पर दावा कर रही है कि पिछला दशक सबसे गर्म था. क्या विज्ञान में कोई ऐसी पद्धति विकसित की गई है, जिसके आधार पर पिछले दशकों में तापमान के बदलाव को जाना जा सके. मतभिन्नता तो वायुमंडल में मौजूद एरोसोल यानी कार्बन, सल्फेट एवं धूल के कणों को ग्लोबल वॉर्मिंग के लिए ज़िम्मेदार मानने को लेकर भी है. कई संस्थाओं में मतैक्य है कि ग्रीनहाउस गैस का लगातार उत्सर्जन भी ग्लोबल वार्मिंग की एक वजह हो सकता है, लेकिन वैज्ञानिकों के सामने पिछले दशकों के तापमान में होने वाले बदलाव को चिन्हित करना एक बड़ी चुनौती है.

पिछले दिनों क्लाइमेट चेंज पर होने वाले शोध में दूसरे अन्य शोधों की तुलना में राजनीतिक और आर्थिक दबाव बढ़ गए हैं. पर्यावरण को लेकर चल रही बहस और राजनीतिक एजेंडे की वजह से शोध में जुटी संस्थाओं एवं वैज्ञानिकों पर दबाव इतना ज़्यादा हो गया कि वे इन शोधों की ख़ामियों को दरकिनार कर नतीजों पर पहुंचने लगे. यह ग़ैर ज़िम्मेदार कोशिश कालांतर में उजागर हुई. इस वजह से इस क्षेत्र में शोध कर रही संस्थाओं एवं लोगों की मंशा पर प्रश्नचिन्ह लग गया है. ज़रूरत यह है कि ग्लोबल वॉर्मिंग को लेकर बनी संशय की स्थिति साफ़ की जाए. पहल आईपीसीसी और ख़ुद डॉक्टर पचौरी को करनी चाहिए, ताकि उनकी साख बची रह सके.

अनंत विजय
feedback@chauthiduniya.com

योजना के लिए जारी किए गए फंड के इस्तेमाल में भी राज्यों के बीच अंतर दिखाई पड़ता है. इस मामले में कुछ राज्यों का प्रदर्शन अच्छा है तो कई राज्य पिछड़े हुए हैं.

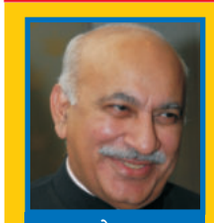

एम जे अकबर

सुधरे नहीं तो सिधर जाएगी भाजपा

भारतीय जनता पार्टी एक अलग ही उलझन में फंसी नज़र आ रही है. यह एक ऐसे सट्टेबाज़ की तरह दिख रही है, जिसने एक फुटबॉल मैच में जितना नुक़सान उठाया, उससे कहीं ज़्यादा उसे एक्शन रिप्ले में गंवाना पड़ा. पार्टी की जो वास्तविक ग़लती थी, वह एक भ्रम था, लेकिन जो ग़लती भाजपा आज कर रही है, वह उसकी नासमझी है. ऐतिहासिक नज़रिए से देखें तो पार्टी का यह मानना ही सबसे बड़ी ग़लती थी कि भारत एक धर्मनिरपेक्ष देश इसलिए है, क्योंकि मुल्क के मुसलमान ऐसा चाहते हैं. यह सही है कि धर्मनिरपेक्षता के साथ मुसलमानों के हित जुड़े हैं, क्योंकि इससे सामाजिक एवं आर्थिक समानता और राजनीतिक शक्ति को बल मिलता है, लेकिन यह मुद्दे का एक पहलू भर हैं.

1947 में भारतीय मुस्लिमों के अभिजात्य वर्ग ने राजनीतिक कारणों से भारत को विभाजित कर पाकिस्तान का गठन किया. अगले छह दशकों में ही पाकिस्तान की हालत यह हो गई कि देशवासी अपने सह मुस्लिमों, जो बंगाली थे, के साथ नहीं रह पाए और उन्हें अलग राष्ट्र बनाने को मजबूर कर दिया गया. मुल्क के बाक़ी अल्पसंख्यक भी हाशिए पर धकेले जा चुके हैं और पाकिस्तान वास्तव में इस्लामिक रिपब्लिक ऑफ ब्लडिस्तान में तब्दील हो चुका है. हिंदुस्तान की हालत ऐसी नहीं है, हालांकि इसकी कल्पना मात्र से भी राम सेना जैसी संस्थाओं के मुंह से लार ज़रूर टपकने लगती है. इसकी स्पष्ट वजह है. भारत एक धर्मनिरपेक्ष देश इसलिए है, क्योंकि देश की बहुसंख्यक हिंदू जनसंख्या ऐसा चाहती है. अपने संख्या बल के बूते वह देश की राजनीतिक धारा को प्रभावित करने का दम रखती है और उसने ऐसे संविधान के विकास में अपनी पूरी ताक़त लगा दी है, जो धार्मिक कट्टरवादिता के विचार से कोसों दूर है. भारत धर्मनिरपेक्ष इसलिए नहीं है, क्योंकि यह मुस्लिमों की ज़रूरत है, बल्कि इसलिए कि हिंदू ऐसा चाहते हैं. 1937 के चुनावों में चुनाव क्षेत्रों को धार्मिक आधार पर बांटा गया था, लेकिन उस दौर में भी हिंदू महासभा एक सीट नहीं जीत पाई थी. 1946 के चुनावों में देश का सांप्रदायिक माहौल पूरी तरह बदरंग हो चुका था और मुस्लिम लीग मुसलमानों के लिए सुरक्षित सीटों पर अपनी बादशाहत साबित कर रही थी, लेकिन हिंदू महासभा के प्रदर्शन में फिर भी कोई ख़ास सुधार नहीं हुआ. भाजपा यदि ख़ुद को हिंदूवादी पार्टी के रूप में स्थापित करना चाहती है तो बेहतर यही होगा कि वह कलह के अतिवादी रवैये के बजाय सह अस्तित्व का मध्यमार्गी नज़रिया अपनाए. तार्किकता के नज़रिए से यही ज़्यादा औचित्यपूर्ण लगता है. वैसे भी संघर्ष के मुक़ाबले सौहार्द के लिए कहीं ज़्यादा साहस, प्रतिबद्धता और नैतिक बल की ज़रूरत होती है. भाजपा की इस ग़लत समझ के पीछे दरअसल एक महत्वपूर्ण तथ्य को न समझ पाने की नाकामी है. हिंदुस्तान एक असाधारण सांस्कृतिक क्रांति के दौर से गुज़र रहा है, जो वैसे तो देश के बहुसंख्यक हिंदू समाज में केंद्रित है, लेकिन इसका असर जाति और धर्म के बंधनों से परे समाज के हर तबके में सपष्ट रूप से नज़र आ रहा है. नए जमाने का भारतीय नारी समाज हमारे चारों ओर दिखने लगा है. लड़कियां कॉलेजों में एडमिशन के वक़्त लड़कों से प्रतियोगिता करती दिखती हैं, ऑफिस जाते समय रास्ते में नज़र आती हैं,

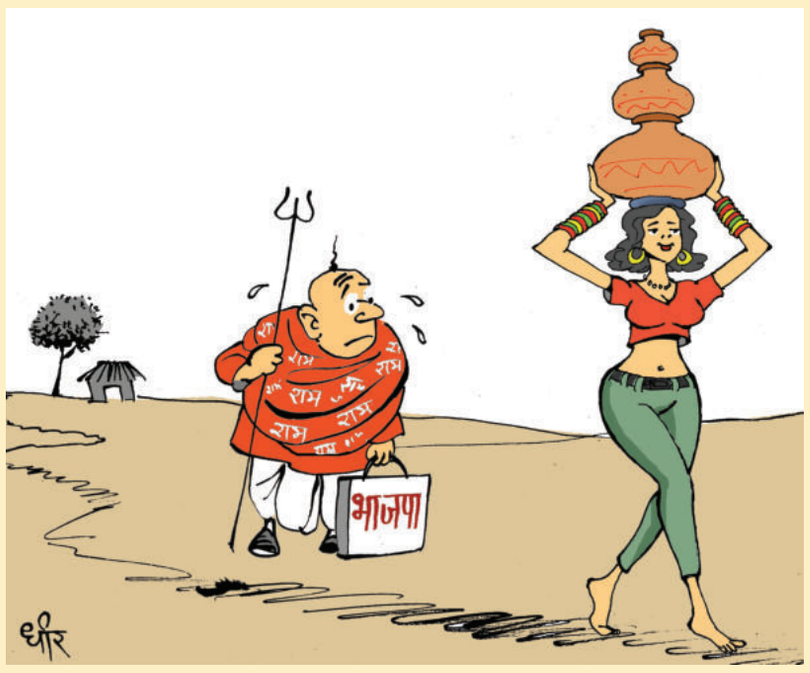

टेलीविज़न कार्यक्रमों में कभी कलाकार तो कभी वक्ता और कभी श्रोता के रूप में दिखती हैं. खेल के मैदानों से लेकर गलियों–चौराहों तक आप जिस तरफ़ भी देखें, उनकी मौजूदगी को नज़रअंदाज़ नहीं कर सकते. सबसे महत्वपूर्ण तो यह है कि इतना करने के बावजूद वे एक बेटी, पत्नी, मां या बहू के रूप में अपनी ज़िम्मेदारियों को निभाते हुए घर के अंदर भी मौजूद हैं.

ग़ौरतलब है कि यह क्रांति केवल शहरी अभिजात्य वर्ग तक ही सीमित नहीं है. कुछ सप्ताह पहले देहरादून एयरपोर्ट से मसूरी एकेडमी जाते हुए हमें ट्रैफिक जाम के चलते मुख्य सड़क छोड़ दूसरे रास्ते से जाने को मजबूर होना पड़ा. गांवों से गुज़रते हुए हमने महिलाओं को अपनी पीठ पर पानी ले जाते हुए देखा. हालात और पुरुष प्रधान समाज की बंदिशों में कैद उक्त महिलाएं दूर किसी नदी, तालाब या कुएं से पीने का पानी लेकर अपने घरों को जा रही थीं. हैरानी की बात तो यह है कि इस पहाड़ी ग्रामीण इलाक़े में भी कम उम्र की लड़कियों को हमने जींस पहने हुए देखा. यह इस बात की ओर इशारा करता है कि नारियां, चाहे वे कहीं की भी हों, आधुनिकता और आर्थिक स्वावलंबन के एक समान सपने देखती हैं. अपनी अज्ञानता और कट्टरवादी नज़रिए के चलते अधिकांश लोग इस क्रांति को पूरी तरह समझ नहीं पाए हैं, जिसकी शुरुआत 1980 के दशक में हो गई थी, लेकिन अब इसकी गति पर ब्रेक लगाना नामुमकिन साबित हो रहा है. हम जहां भी देखें, बदलाव की इस बयार को स्पष्ट रूप से महसूस किया जा सकता है. पहनावे से लेकर सेक्स से जुड़े मामलों तक और आदर्शों से लेकर परीक्षा परिणामों तक इसे आसानी से देखा जा सकता है. अपने इस नए अवतार में भारतीय नारियां यह दावा कर रही हैं कि वे भविष्य में नेतृत्वकारी भूमिका के लिए तैयार हो रही हैं. उन्होंने स्वतंत्रता को सशक्तीकरण के हथियार में तब्दील कर लिया है. वे बदलाव के लिए स्वतंत्रता की मांग कर रही हैं. ऐसी स्वतंत्रता, जो उनकी ज़िंदगी की दिशा बदल दे. वे चाहती हैं कि ज़रूरत पड़ने पर परिवार के मुक़ाबले अपने करियर को चुन सकें, घर की चहारदीवारी से बाहर निकल किसी पब में जाने से उन्हें कोई न रोके. वे उन सुविधाओं की मांग कर रही हैं, जो सदियों से पुरुषों के लिए सुरक्षित रही हैं. सामाजिक व्यवहार का बैरोमीटर माना जाने वाला सिनेमा जगत नारियों के सती सावित्री वाले रूप को पहले ही ख़ारिज़ कर चुका है, जो अपने पति परमेश्वर के चरणों में दासी बना पड़ा रहता था. नए जमाने की भारतीय नारी किसी परंपरा या विचारधारा के नाम पर पिंजड़े में कैद होकर नहीं रहना चाहती, चाहे वह पिंजड़ा सोने का ही क्यों न हो. सच्चाई तो यह है कि वह खुले तौर इन बंदिशों का मखौल उड़ाने के पक्ष में है. डर या अनजाने परिणाम की आशंका से उसके पैर कभीकभार ठिठक ज़रूर जाते हैं, लेकिन यह केवल क्षणिक ही होता है. वह अंदर से इतनी मज़बूत हो चुकी है कि उसके पैरों को बांध कर नहीं रखा जा सकता. मैं यह नहीं कह रहा कि हर महिला ऐसा ही चाहती है, लेकिन इतना अवश्य है कि यही छवि बहुसंख्यक नारियों की सोच और उनके आचार–व्यवहार को प्रभावित कर रही है. अपनी लिंगभेद की भावना को सार्वजनिक किए बग़ैर इस नई पीढ़ी को आप पबों से बाहर नहीं निकाल सकते. मंगलोर के पब में लड़कियां इसलिए नहीं गई थीं कि वे शराब पीकर लुढ़क जाना चाहती थीं, बल्कि वे पबों में जाने की अपनी स्वतंत्रता का प्रदर्शन करने के लिए वहां गई थीं. रोचक बात यह है कि पब पर हमला करने वाले लोगों को विभिन्न धर्मों के दकियानूसी तबके का समर्थन हासिल था. बदलाव का विरोध करने वाले इन प्रतिक्रियावादी और दकियानूसी तत्वों का कुछ परंपरावादी संगठनों में बोलबाला हो सकता है, लेकिन नई पीढ़ी के युवाओं के लिए इनकी कोई अहमियत नहीं. धर्म अभी भी भारतीय समाज में एक महत्वपूर्ण स्थान रखता है. दुर्गा पूजा, होली या दीवाली के दौरान यह युवा वर्ग अपने पूर्वजों से भी ज़्यादा उत्साहित और प्रसन्न होता है, लेकिन धार्मिक विचारों और विश्वासों के लिहाज़ से वह सामाजिक अलगाव के बजाय सामाजिक समरसता का पक्षधर है. भारत जैसे–जैसे एक युवा देश के रूप में परिवर्तित होता जा रहा है, सामाजिक–राजनीतिक क्षेत्रों में युवाओं की भूमिका में लगातार इज़ाफ़ा हो रहा है. सत्ता का पहिया उसी राजनीतिक दल के पक्ष में घूमेगा, जो इस नई सोच और मानसिकता एवं धार्मिक संस्कृति के पक्ष में होगा. यदि भाजपा आधुनिक दौर की युवा महिलाओं को अपनी ओर आकर्षित नहीं कर सकती, उनका वोट हासिल नहीं कर सकती तो इसका कोई भविष्य नहीं है.

feedback@chauthiduniya.com

मनरेगा : अनुभव से सीखने की ज़रूरत

डॉ. सौमित्र मोहन

महात्मा गांधी नेशनल रूरल इंप्लायमेंट गारंटी प्रोग्राम (मनरेगा) की शुरुआत हुए चार साल से ज़्यादा वक़्त बीत चुका है और अब यह देश के हर ज़िले में लागू है. अपनी सफलता से तमाम तरह की उम्मीदें पैदा करने वाले मनरेगा को सरकार की सबसे महत्वाकांक्षी एवं आकर्षक योजनाओं में गिना जा रहा है. हालांकि इसके क्रियान्वयन में कई मुश्किलें हैं और इसके कुछ पहलुओं की काफी आलोचना भी की गई है, फिर भी यह मानना चाहिए कि मनरेगा आज देश के बेरोज़गार लोगों तक सरकारी सहायता पहुंचाने का सबसे प्रमुख ज़रिया बन चुका है. इसकी मदद से देश के ग्रामीण इलाक़ों में लोगों के जीवन स्तर में आए सुधार को स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है. साथ ही इसके माध्यम से आधारभूत संरचनाओं के विकास को भी नज़रअंदाज़ नहीं किया जा सकता. लोगों की क्रय शक्ति में इज़ाफ़ा हुआ है और इसका मल्टीप्लायर इफेक्ट देश की अर्थव्यवस्था को भी गति प्रदान कर रहा है.

पिछले चार सालों के अनुभव के आधार पर इसमें कोई संदेह नहीं कि इस कार्यक्रम की संरचना और परिकल्पना के स्तर पर कुछ सुधार किए जाएं तो यह अपने उद्देश्यों को हासिल करने में और भी ज़्यादा कामयाब हो सकता है. यह सर्वविदित है कि देश का हर ज़िला इस योजना का एक समान रूप से फ़ायदा नहीं उठा पाया है. यह तथ्य अलग–अलग राज्यों के प्रदर्शन में अंतर से और भी स्पष्ट हो जाता है. इतना ही नहीं, पूरे देश का कोई एक ज़िला भी सभी कार्डधारियों को सौ दिन का सुनिश्चित रोज़गार देने में कामयाब नहीं हुआ है. इसके लिए वित्तीय संसाधनों की कमी को ज़िम्मेदार नहीं ठहराया जा सकता, क्योंकि सरकार ने अपनी ओर

से इसमें कोई कमी नहीं छोड़ी है. अक्सर यह तर्क दिया जाता है कि मनरेगा एक मांग आधारित योजना है और जोर रोज़गार की मांग करने वाले लोगों को रोज़गार के अवसर उपलब्ध कराने पर होना चाहिए, न कि योजना में व्यय के लिए जारी की गई रकम को ख़र्च करने पर. लेकिन सच्चाई यही है कि इस देश में अभी भी करोड़ों ऐसे लोग हैं, जिन्हें रोज़गार की ज़रूरत है. यह महसूस किया गया है कि योजना के क्रियान्वयन के लिए ज़िम्मेदार एजेंसियों अर्थात ज़िला प्रशासन एवं अन्य सूत्र अभिकरणों को और ज़्यादा सक्रिय होना चाहिए. उन्हें सूचना, शिक्षा एवं जागरूकता कार्यक्रमों की मदद से ज़्यादा लोगों तक पहुंचना चाहिए, ताकि रोज़गार की आवश्यकता वाले लोग इसके प्रति और ज़्यादा जागरूक हो सकें. कई लोगों को अब तक यह नहीं पता कि मनरेगा के अंतर्गत वे रोज़गार के अवसर उपलब्ध कराने की मांग कर सकते हैं और अगर उक्त अवसर पंद्रह दिनों के अंदर उपलब्ध नहीं कराए गए तो वे बेरोज़गारी भत्ता पाने के हक़दार हैं.

योजना के लिए जारी किए गए फंड के इस्तेमाल में भी राज्यों के बीच अंतर दिखाई पड़ता है. इस मामले में कुछ राज्यों का प्रदर्शन अच्छा है तो कई राज्य पिछड़े हुए हैं. फंडों की उपादेयता और योजनाओं के क्रियान्वयन के लिहाज़ से राजस्थान, आंध्र प्रदेश और केरल जैसे राज्यों ने काफी अच्छा काम किया है. इसी का परिणाम है कि इन राज्यों में लोगों की क्रय शक्ति में वृद्धि हुई है. पश्चिम बंगाल और अन्य कुछ राज्य शुरुआत में पिछड़ने के बाद अब अपने प्रदर्शन में लगातार सुधार की ओर अग्रसर हैं. यह माना जाता है मनरेगा के अंतर्गत रोज़गार की मांग करने वाले लोगों की कमी है, क्योंकि निजी क्षेत्र में काम करने पर उन्हें ज़्यादा मेहनताना मिलता है. यही वजह है कि राज्य अपने हिस्से की रकम का पूरा इस्तेमाल नहीं कर पाते. यह तर्क अपेक्षाकृत विकसित राज्यों एवं कम विकसित राज्यों के शहरी इलाक़ों के लिए सही हो सकता है, लेकिन बिहार, उत्तर प्रदेश या झारखंड जैसे पिछड़े राज्यों के लिहाज़ से देखें तो इसमें कोई दम नहीं है. फंडों के इस्तेमाल और रोज़गार के अवसर उपलब्ध कराए जाने के मामले में निश्चित रूप से इनका प्रदर्शन और अच्छा हो सकता था. यह भी महसूस किया जाता है कि यदि भारतीय अर्थव्यवस्था इसी तरह सात प्रतिशत से ज़्यादा की दर से विकास करती रही तो अधिकतर लोग मनरेगा के अंतर्गत मिलने वाले 75 से 140 रुपये प्रतिदिन की मज़दूरी के बजाय बाज़ार में उपलब्ध ज़्यादा आकर्षक मज़दूरी वाले रोज़गार के अवसरों की ओर उन्मुख होंगे. अब तक कोई भी राज्य सभी ज़रूरतमंदों को सौ दिन का सुनिश्चित रोज़गार उपलब्ध कराने में सफल नहीं हुआ है. इसमें कोई संदेह नहीं कि इस लक्ष्य तक पहुंचने के लिए योजना में सुधार की पर्याप्त गुंजाइश है.

योजना के अब तक के परिणामों को देखें तो थोड़ा और साहस दिखाने में कोई बुराई नहीं है. योजना में सौ दिनों की सीलिंग को हटाकर इसे पूरी तरह से मांग आधारित रोज़गार गारंटी योजना में तब्दील किया जा सकता है, ताकि ज़रूरतमंदों की मांग के अनुरूप यह पूरे साल उपलब्ध रहे. हर घर के लिए सौ दिनों के रोज़गार की सीमा को तो निश्चित रूप से ख़त्म किया जाना चाहिए. इससे ज़िले में क्रियान्वयन के लिए ज़िम्मेदार अभिकरणों को हर घर को सौ दिनों से ज़्यादा का रोज़गार उपलब्ध कराने की छूट मिल जाएगी. इसकी मदद से ज़िला अभिकरण ख़ुद अपने द्वारा तय किए जाने वाले रोज़गार दिवस के लक्ष्य का ज़िले में मौजूद घरों की संख्या के साथ बेहतर ढंग से तालमेल बैठा पाएंगे. चूंकि राज्य सौ रोज़गार दिवस का लक्ष्य पाने में नाकामयाब रहे हैं तो योजना को वित्तीय संसाधन उपलब्ध कराने के लिए सरकारी कोष पर पड़ने वाला भार भी उम्मीद से कम ही है. देश की अर्थव्यवस्था जिस तेज़ी से आगे बढ़ रही है, उसे देखकर यही लगता है कि आने वाले दिनों में निजी क्षेत्र में बेहतर मज़दूरी वाले रोज़गार के अवसरों में और वृद्धि होगी. जनसंख्या के लिहाज़ से भारत एक जवान देश है और आने वाले दिनों में रोज़गार की ज़रूरत वाले लोगों की संख्या में इज़ाफ़ा ही होगा. इस बढ़ी हुई संख्या के मद्देनज़र सौ दिनों के रोज़गार दिवस की सीमा में बदलाव करने की और भी ज़्यादा ज़रूरत है.

(लेखक पश्चिम बंगाल में आईएएस अधिकारी हैं. आलेख में व्यक्त विचार उनके अपने हैं और इनका सरकार के विचारों से कोई संबंध नहीं है.)

feedback@chauthiduniya.com

यह जनता की आवाज़ है

07–13 जून की आवरण कथा–प्रधानमंत्री जी, यह सफलता है या विफलता ने कई सवाल उठाए हैं सरकार के कामकाज की स्थिति पर. एक बेबाक विश्लेषण की यही पहचान होती है कि उसमें कोई सजावट नहीं होती, सिर्फ़ तथ्य होते हैं, जो हक़ीक़त बयां करते हैं. लेखक अपने प्रयास में सफल हैं. उन्होंने जनता के दु:ख–दर्द और देश की हालत को बेहतर तरीक़े से पहचाना और उसे ज़ोरदार आवाज़ दी.

–शैलेंद्र कुमार शर्मा, *कानपुर, उत्तर प्रदेश.*

कवर स्टोरी–प्रधानमंत्री जी, यह सफलता है या विफलता के अंतर्गत लेखक मनीष कुमार ने मनमोहन सरकार की दूसरी पारी के पहले एक साल के कामकाज पर जिस तरह रोशनी डाली है, वह काबिले तारीफ़ है. इस देश में अमीर दिनोंदिन और अमीर एवं गरीब दिनोंदिन और ग़रीब होते जा रहे हैं, लेकिन हमारे अगुवाकारों को किसी तरह की चिंता ही नहीं है. हम सबके लिए यही सबसे बड़ी चिंता है.

–उर्मिला राजवंशी, *ई–मेल से.*

तरक़्क़ी पसंद युवा पीढ़ी

07–13 जून के अंक में प्रकाशित आलेख–फ़तवों से बेफ़िक्र मुस्लिम युवा एक सटीक विश्लेषण है. हर फ़तवा जायज़ हो, यह ज़रूरी नहीं है. आंख मूंद कर फ़तवे का अनुसरण तो कतई नहीं होना चाहिए. हमारी युवा पीढ़ी इस संदर्भ में ख़ासी जागरूक है. वह ऐसे किसी भी नियम–क़ायदे को नहीं मानती, जो आदमी की आज़ादी को ख़तरे में डालते हों. तरक़्क़ी पसंद पुरानी पीढ़ी भी ऐसे फ़तवों, नियमों और क़ायदों को नहीं मानती. युवाओं को ही समाज को आगे ले जाना है, इसलिए उनका आजाद ख्याल होना निहायत ज़रूरी है.

–शमीम अहमद, *गया, बिहार.*

फ़तवों से बेफ़िक्र मुस्लिम युवा आलेख पढ़कर अच्छा लगा. इसलिए नहीं कि इसमें देवबंद दारूल उलूम के नए फ़तवे की आलोचना की गई है, बल्कि इसलिए कि मुस्लिमों का युवा वर्ग ऐसे फ़तवों को कोई अहमियत नहीं देता. आज पूरी दुनिया में इस्लाम को संदेह की नज़रों से देखा जाता है तो इसकी सबसे बड़ी वजह यही है कि प्रेम और शांति का पाठ पढ़ाने वाला यह महान धर्म सदियों से इन्हीं फ़तवों और धर्म की ग़लत व्याख्या के बीच उलझ कर रह गया है. मुस्लिम युवाओं की यह प्रगतिवादिता दिल को सुकून देती है और यह उम्मीद भी बंधाती है कि वर्तमान चाहे जैसा भी हो, इस्लाम के भविष्य को लेकर ज़्यादा चिंता करने की ज़रूरत नहीं है.

–मोहम्मद इदरीश, *कोलकाता, पश्चिम बंगाल.*

गोरखा राजनीति और मदन तामांग

आलेख–गोरखा राजनीति का एक तालिबानी चेहरा, गोरखा नेता मदन तामांग की हत्या की वजहों और क्षेत्रीय राजनीति के बिगड़ते चरित्र पर प्रकाश डालता है. विमल गुरुंग समेत विभिन्न कट्टरवादी एवं कथित गोरखा हितैषी नेता माहौल को प्रदूषित कर रहे हैं. वास्तव में मदन तामांग की हत्या के बाद गोरखा आंदोलन का एक उदारवादी चेहरा ख़त्म हो गया. अहिंसा के प्रबल समर्थक मदन लोकतांत्रिक तरीक़े से अपनी बात रखने के लिए जाने जाते थे.

–रंजीत भट्टाचार्य, *पुरलिया, पश्चिम बंगाल.*

जातिगत जनगणना का औचित्य

समूचे देश में जनगणना का काम शुरू हो चुका है. वहीं यह भी बहस चल रही है कि जनगणना का आधार जातिगत होना चाहिए. मांग जायज़ है, क्योंकि यदि ऐसा होता है तो नीति निर्माताओं को देश के सामाजिक एवं आर्थिक विकास की योजनाएं बनाने और उनका क्रियान्वयन कराने में काफी मदद मिलेगी. इसलिए इस मांग का विरोध नहीं होना चाहिए.

–उत्तम सिंह थपलियाल, *देहरादून, उत्तराखंड.*

जातिगत आधार पर जनगणना के मुद्दे पर उठे बवाल का औचित्य समझ में नहीं आता. कुछ राजनीतिक दलों ने इसकी मांग की है तो इसकी एकमात्र वजह उनका तुच्छ राजनीतिक स्वार्थ है. दुनिया इतनी आगे निकल चुकी है और हम अभी भी जाति और धर्म के बंधनों में बंधे रहना चाहते हैं. इन राजनीतिक दलों और नेताओं को अब तक यह समझ में नहीं आ रहा कि मंडल–कमंडल की राजनीति से न देश का भला होने वाला है और न ही ख़ुद उनका. कभी राम और हिंदुत्व के मुद्दे पर पूरे देश में माहौल बनाने में सफल रही भारतीय जनता पार्टी भी अपना अस्तित्व बनाए रखने के लिए नए मुद्दों की तलाश करने को मजबूर है. केंद्र सरकार को चाहिए कि वह समाज को बांटने का काम करने वाली ऐसी मांगों को सिरे से ख़ारिज़ कर दे.

–भारतेंदु, *साहिबाबाद, उत्तर प्रदेश.*

पंजाब का दर्द

दमन के ख़िलाफ़ जनता में उबाल शीर्षक से प्रकाशित स्टोरी ने पंजाब की बादल सरकार की पोल खोल कर रख दी है. किसानों, राज्य कर्मचारियों एवं छात्रों के साथ–साथ आम जन का भी आक्रोश दिनोंदिन बढ़ता जा रहा है. सरकार भले ही प्रयास कर ले कि विरोध के स्वर दब जाएं, लेकिन ऐसा होने वाला नहीं है. इसलिए सरकार को अपने दमनात्मक रवैये से बाज आना चाहिए.

–सुखविंदर सिंह, करतार सिंह, *जालंधर, पंजाब.*

आप अपने स्वतंत्र विचार तथा प्रतिक्रियाएं हमें इसी पते पर भेजें. संपादक, चौथी दुनिया, एफ-2, सेक्टर-11 नोएडा, (उत्तर प्रदेश) पिन-201301

ई-मेल पता : feedback@chauthiduniya.com

संतोष भारतीय

जब तोप मुक़ाबिल हो

भोपाल गैस पीड़ितों के दर्द का व्यापार

आज अर्जुन सिंह मीडिया के, राजनीतिक दलों के, ख़ुद उनके अपने दल कांग्रेस के निशाने पर हैं. दो दशक से ज़्यादा बीत गए, मीडिया को भोपाल गैस त्रासदी महज़ एक खानापूर्ति की तरह याद थी. दिसंबर की तीन तारीख़ को, दरअसल दो और तीन दिसंबर की रात साढ़े तीन बजे के बाद गैस रिसी थी, जिसने लगभग बीस हज़ार से ज़्यादा जानें ले लीं. अब तक वर्ष में एक बार बस तीन दिसंबर को भोपाल गैस कांड की याद में कुछ ख़बरें लिखी जाती रहीं और कुछ टीवी पर दिखाई जाती रहीं. सिर्फ़ कुछ दिनों के लिए भोपाल गैस कांड पर चीख पुकार शुरू हुई है.

पच्चीस साल से भोपाल गैस के शिकार परिवार अकेले लड़ाई लड़ रहे थे. कोई राजनैतिक दल उनके साथ नहीं खड़ा था. भाजपा तो बिल्कुल नहीं, आज भाजपा के मुख्यमंत्री कह रहे हैं कि वह गैस पीड़ितों के हितों की रक्षा करेंगे, पर भाजपा की सरकार तो पहले भी मध्य प्रदेश में रही है. उसने न मरे लोगों को ज़्यादा मुआवज़ा दिलवाने या देने का फ़ैसला लिया और न प्रभावित परिवारों को मदद पहुंचाने का. आज दिल्ली में प्रकाश जावड़ेकर और भोपाल में शिवराज सिंह चौहान गैस पीड़ितों के लिए नहीं लड़ रहे, बल्कि कांग्रेस के मुक़ाबले भाजपा को राजनीतिक फ़ायदा कैसे मिले, इसके रास्ते तलाशते नज़र आ रहे हैं.

केंद्र में सात साल भाजपा के नेतृत्व वाली सरकार रही, एक बार भी भोपाल गैस पीड़ित और उनका दर्द उन्हें नज़र नहीं आया. आज उन्हें सब याद आ रहा है, हालांकि उन्होंने यूनियन कार्बाइड के नक़ाब वाली कंपनी डाओ से चुनाव में चेक से चंदा तक लिया. उनका गुस्सा यूनियन कार्बाइड के ख़िलाफ़ कम, अर्जुन सिंह के ख़िलाफ़ ज़्यादा है. अर्जुन सिंह ने अपनी राजनीति का आधार सांप्रदायिकता के विरोध को बनाया था और केंद्र में या राज्य में पदों पर रहते हुए भाजपा और संघ का मुखर विरोध किया था. भाजपा आज उसका बदला ले रही है.

भाजपा को क्यों कहें, कांग्रेस ही उनका साथ नहीं दे रही. महासचिव दिग्विजय सिंह एक बात कहते हैं तो सत्यव्रत चतुर्वेदी उनकी बात का मज़ाक उड़ाते हैं. ताक़तवर महासचिव जनार्दन द्विवेदी दोनों को लताड़ देते हैं. कांग्रेस पार्टी ने अर्जुन सिंह को अकेला छोड़ दिया है. अर्जुन सिंह ख़ामोश हैं. मीडिया उनसे कुछ बुलवाना चाहता है और कांग्रेस के भी कुछ नेता उन्हें उकसा रहे हैं. अर्जुन सिंह कमज़ोर नहीं हैं कि अपना बचाव न कर सकें, पर उनकी राजनैतिक शिष्टता और अनुशासन उन्हें ख़ामोश रहने पर मजबूर कर रहा है.

मैं 10 जून की सुबह साढ़े ग्यारह बजे उनसे मिला. संयोग से उनकी एप्वाइंटमेंट लिस्ट में मेरा नाम पहला था. एक नए उर्दू साप्ताहिक अख़बार चौथी दुनिया के प्रकाशन शुरू होने के अवसर पर होने वाले समारोह में उन्हें निमंत्रण देने गया था. इसी अवसर पर अनौपचारिक बातचीत हुई. मैंने कहा कि टीवी चैनल आपके घर के बाहर खड़े हैं. सोचकर बोले कि सबसे ज़्यादा कन्फ्यूज़न ये टीवी वाले ही फैलाते हैं. अर्जुन सिंह के चेहरे पर उदासी थी. शायद उन्हें तीन दिसंबर का दिन याद आ रहा होगा. हम में से किसी ने एक साथ दस या बीस लाशें नहीं देखी होंगी, पर अर्जुन सिंह ने तो पंद्रह हज़ार से ज़्यादा लाशें तीन, चार और पांच दिसंबर के बीच देख ली थीं. उस समय उनकी सर्वोच्च प्राथमिकता लोगों की जान बचाना थी कि कहीं पंद्रह हज़ार की संख्या डेढ़ या दो लाख में न बदल जाए. गैस को लेकर अफवाहें और फिर भगदड़. जो मर गए थे, उनकी लाशें हटाना और जो ज़िंदा बचे थे, उनके इलाज का इंतज़ाम करना. भोपाल में सरकार ख़त्म हो चुकी थी, न दवाएं थीं और न कफ़न के लिए कपड़े. भोपाल निवासियों ने सरकार का दायित्व संभाल लिया था. कपड़े वालों ने कपड़े और दवा वालों ने दवाएं मुफ्त देनी शुरू की.

चौथी दुनिया टीवी पर इस घटना के चश्मदीद गवाह सुधीर पांडे ने बताया कि जो भी घर से निकलता था, वह साथ में रोटी बांधकर निकलता था, ताकि वे किसी के काम आ सकें. इस गवाह ने ख़ुद पांच से सात लाशें एक साथ बांध कर जलाईं और कुछ को दफनाया. सभी लोग इस काम में लगे थे कि कहीं महामारी न फैल जाए. इस प्रत्यक्षदर्शी के अनुसार, दहशत की वजह से शहर के बाहर जाने वाली हर सवारी खचाखच भरी जाती थी. यदि कोई कुचल जाता था तो कौन कुचला, इसे देखने भी कोई नहीं रुकता था. प्रशासन की कोई गाड़ी और कोई अधिकारी सड़क पर निकल ही नहीं पा रहा था. सभी अफवाहों की वजह से शहर छोड़कर भाग जाना चाहते थे. मौत न हिंदू देख रही थी और न मुसलमान. ऐसे में अर्जुन सिंह के सामने सबसे बड़ा ख़तरा लूटमार, चोरी, डकैती के साथ सांप्रदायिक दंगे का भी रहा होगा. भोपाल गैस रिसाव जैसी घटना आज़ाद भारत में पहले कभी नहीं हुई थी. किसी तरह शहर को पटरी पर लाना था. शहर एक महीने बाद ही पटरी पर आ पाया था.

अर्जुन सिंह, लालकृष्ण आडवाणी, प्रणव मुखर्जी, ए बी वर्धन या ममता बनर्जी जैसे लोगों के निर्माण में पचास-साठ साल लगते हैं. इनसे चूक हो सकती है, फ़ैसले लेने में देर हो सकती है, पर ये देशद्रोही नहीं हो सकते. मीडिया में आए ग़ैर ज़िम्मेदार लोग बिना जानकारी या परिस्थिति समझे इन्हें देशद्रोही की तरह पेश करने लगते हैं. इनके लिए सबसे बड़ा सवाल है कि वारेन एंडर्सन कैसे गया. एक अफवाह फैली कि किसी का दिल्ली से फोन गया था. जिसे यह मालूम है, उसे नाम भी मालूम होगा. पर इस ख़बर के पीछे की अफवाह भरी कहानी उड़ाने वाले की तलाश कोई नहीं कर रहा. सभी भरोसा कर रहे हैं और चाहते हैं कि अर्जुन सिंह किसी कांग्रेस नेता का नाम ले लें. अगर अर्जुन सिंह नाम नहीं लेते तो उन्हें देशद्रोही बताने में मीडिया कोई देर नहीं करेगा. कोई भी सरकार होती, एंडर्सन को नहीं रोक पाती. भाजपा ने अपने किसी कार्य से यह साबित नहीं किया कि वह अमेरिका को जवाब देने की स्थिति में है. न्यूक्लियर लाइबिलिटी बिल इसका उदाहरण है, जिसमें कांग्रेस और भाजपा एक साथ खड़े हैं.

मैंने एक रात पहले एक दोस्त से असावधानीवश कह दिया था कि मैं कल अर्जुन सिंह से मिल रहा हूं. उन्होंने अगले दिन शाम मुझसे पूछा कि क्या बात हुई, उन्हें ऑफ द रिकॉर्ड बता दें. वे दोस्त टेलीविज़न की बड़ी पर्सनालिटी हैं. मैंने उन्हें बताया कि मैं उर्दू चौथी दुनिया का निमंत्रण लेकर मिला और थोड़ी ही बात हुई. थोड़ी देर बाद देखा कि टीवी पर ब्रेकिंग न्यूज़ चल रही थी कि अर्जुन सिंह ने चुप्पी तोड़ी. *चौथी दुनिया* के प्रधान संपादक को इंटरव्यू दिया. बातचीत इंटरव्यू में बदल गई. रात साढ़े नौ बजे मुझे विनोद दुआ लाइव में साफ कहना पड़ा कि ऐसी पत्रकारिता ग़लत है और अगर अर्जुन सिंह चुप हैं तो बिल्कुल ठीक कर रहे हैं. भोपाल गैस कांड के पीड़ितों के दर्द का व्यापार चल रहा है. कौन सा दल या कौन सा नेता जीतता है पता नहीं, किसी टीवी चैनल को कैसी सुर्ख़ी बनाने को मिलती है पता नहीं, पर भोपाल गैस कांड के शिकार लोगों की तकलीफ, उनका दर्द जहां है, वहीं रहेगा. उनका व्यापार होगा, उनके आंसू कोई नहीं पोछेगा.

संपादक
editor@chauthiduniya.com

इस्लाम की हक़ीक़त की चिंता किसे है?

यदि इस्लाम के वजूद की कोई एक वजह है तो इसका सीधा संबंध एक ऐसे समाज से है, जिसमें समानता हो और जो हर तरह की इच्छाओं और दमन से स्वतंत्र हो. इस नज़रिए से देखें तो इस्लाम के लिए इससे ज़्यादा अधार्मिक और कुछ नहीं हो सकता, यदि कोई नवजात शिशु भूख से मर रहा हो, कोई बच्चा अपने पेट के लिए भीख मांगने को मजबूर हो. इस्लाम के लिए इससे ज़्यादा शर्मिंदगी की बात और कुछ नहीं हो सकती, यदि अपनी ज़िंदगी से परेशान कोई महिला अपने बच्चों सहित पानी में डूब जाए, जैसा कि इस्लामिक देशों में अक्सर होता है या फिर अपनी ग़रीबी से बेहाल कोई इंसान चलती ट्रेन के नीचे कटकर अपनी जान दे दे.

हम ऐसी घटनाओं से दुखी तो होते हैं, लेकिन बस इतना ही. इस्लाम के तथाकथित ठेकेदार इस्लामिक देशों में होने वाली हर घटना को सही और ग़लत के धर्मकांटे पर तौलना अपना फ़र्ज़ समझते हैं, धर्म से जुड़े हर मसले पर अपना गला फाड़ते हैं और धरना-प्रदर्शन करते हैं, भले ही इसकी ज़रूरत न भी हो. लेकिन उनमें से कोई यह बताएगा कि भूख और अभाव के ख़िलाफ़ आख़िरी बार ऐसा विरोध-प्रदर्शन कब आयोजित किया गया था? जैसा कि मैं पहले भी कई बार लिख चुका हूं, पूरे इस्लाम और इसकी पूरी विचारधारा को उमर खलीफा की उस एक स्वीकारोक्ति से समझा जा सकता है, जिसमें वह कहते हैं कि यदि एक कुत्ता भी भूखा रह गया तो फ़ैसले के दिन यूफ्रेट्स नदी के किनारे उन्हें जवाब देना पड़ेगा. ध्यान रहे कि इस स्वीकारोक्ति में किसी भूखे इंसान की तो चर्चा भी नहीं की गई है, बल्कि भूखे कुत्ते की अहमियत के बारे में बताया गया है. इस्लामिक विचारधारा की यही वास्तविकता है, न कि मस्जिदों पर टंगे लाउडस्पीकर से गूंजता क्रोध और गुस्सा.

इस्लाम की हक़ीक़त की चिंता किसे है? हम अपने संविधान के भ्रष्ट हो जाने के चलते चिंतित हैं, लेकिन सच्चाई तो यह है कि किसी संविधान से ज़्यादा हमने अपने धर्म की सच्चाई को ही भ्रष्ट कर दिया है. सऊदी अरब को छोड़ दें तो शायद ही किसी अन्य देश में इस्लाम के नाम पर इतनी बातें की जाती हों. हम इस्लाम का नाम लिए बग़ैर कोई काम नहीं करते, कुरान की आयतों को पढ़े बिना कोई नई शुरुआत नहीं करते. लेकिन यदि हम ख़ुद अपने सामाजिक जीवन पर एक नज़र डालें, जो तमाम तरह के भ्रष्टाचार का दूसरा नाम बनकर रह गया है तो यही लगता है कि विचारों में दोहरेपन का इससे बड़ा उदाहरण शायद ही कहीं और मिले. पाखंड और बनावटीपन के इस उदाहरण का नतीजा यह होना चाहिए था कि हम बर्दाश्त करने की ताक़त विकसित करते, अपनी और दूसरों की कमज़ोरियों को समझ सकते, लेकिन हमारा यह बनावटीपन एक अलग ही किस्म का है, जो हमारी स्व-घोषित नेकनीयती के लबादे में छुपा है. यह कहना कि हम त्याग की भावना में विश्वास नहीं करते, मामले को हल्के अंदाज़ में लेने जैसा है, क्योंकि त्याग की चर्चा तो वास्तविकता से मुंह मोड़ना है. हम अपनी बनाई छद्म वास्तविकताओं की दुनिया में जीते हैं. हमें ग़रीबी और भूख से कोई मतलब नहीं, हम इस सत्य से भी अंजान बने हुए हैं कि ग़ैर मुस्लिमों की उदारता के बग़ैर एक राष्ट्र के रूप में आज हम शायद टूट चुके होते. इसके विपरीत हम इसी ग़लतफहमी में जीते हैं कि हम इस्लाम का सबसे मज़बूत गढ़ हैं.

> **इस्लाम की हक़ीक़त की चिंता किसे है? हम अपने संविधान के भ्रष्ट हो जाने के चलते चिंतित हैं, लेकिन सच्चाई तो यह है कि किसी संविधान से ज़्यादा हमने अपने धर्म की सच्चाई को ही भ्रष्ट कर दिया है. सऊदी अरब को छोड़ दें तो शायद ही किसी अन्य देश में इस्लाम के नाम पर इतनी बातें की जाती हों.**

इतना ही नहीं, हम यह भी मानते हैं कि पाकिस्तान का गठन एक विशेष और पवित्र उद्देश्य के लिए किया गया था. मैं मज़ाक नहीं कर रहा, गंभीर और ज़िम्मेदार पदों पर आसीन कई लोग भी ऐसा ही मानते हैं. ख़ुद सेना प्रमुख जनरल अशफाक कयानी, जिन्हें उनके पद को देखते हुए सुलझे विचारों वाला इंसान माना जाना चाहिए, ने अनौपचारिक बातचीत में माना कि पाकिस्तान इस्लाम का अभेद्य गढ़ है. यदि यह सच है तो यह मानने से गुरेज नहीं करना चाहिए कि इस्लाम विध्वंस की कगार पर खड़ा है. फिर यह भी सच है कि अलग-अलग गुटों में बंटे इस्लाम के तथाकथित ठेकेदारों का धर्म की रक्षा की मांग करते हुए सड़कों पर उतरना भी ठीक है. हमारी सेना, जिसकी ताक़त नाटो के मुक़ाबले कुछ भी नहीं है, अफ़ग़ानिस्तान में अमेरिका की जंग का सबसे प्रमुख आधार है. इसे देखते हुए यह उम्मीद की जानी चाहिए कि अमेरिका हमारी हिमायत करेगा. लेकिन हम इसे छुपाने की कितनी भी कोशिश क्यों न करें, सच्चाई यही है कि हम फिर भी अमेरिकी दबाव के आगे झुक जाते हैं. हमारी सेना उतना ही काम करती है, जितना अमेरिका चाहता है. ऐसा क्यों है कि अमेरिका हमें अपने बंधन में बांध कर रखना चाहता है? इस्लाम के इस अभेद्य गढ़ के साथ कुछ न कुछ समस्या तो ज़रूर है. सवाल यह भी है कि अल्लाह के नाम पर जिहाद के लिए प्रतिबद्ध हमारी सेना (यह नारा जनरल जिया ने दिया था) क्या इसी के क़ाबिल है?

क्या हमारे इस्लामिक गणतंत्र में हर नागरिक के लिए न्याय का पैमाना एक जैसा है? समाज के अलग-अलग स्तरों पर अलग-अलग पाकिस्तान का वजूद है. हर तरह की सुविधा से लैस, अल्प सुविधाभोगी और समाज के सबसे निचले स्तर पर तमाम दुश्वारियों के बीच जी रहे लोगों के लिए पाकिस्तान के अलग-अलग मायने हैं. इस्लामिक गणतंत्र होने का दावा करने वाले एक देश के लिए यह अधार्मिकता से कम नहीं है. समाज के विभिन्न तबकों के छात्रों के लिए अलग-अलग स्कूल का होना अधार्मिक है, सामाजिक जीवन में हर तरह की असमानता अधार्मिक है, लेकिन हम इन चीज़ों को देखते हुए भी अपनी आंखों को बंद क्यों रखते हैं. हमारा गुस्सा कुछ गिने-चुने मुद्दों पर ही उबाल क्यों खाता है. हम लोगों के दु:ख-दर्द, दमन और चारों ओर फैली अनैतिकता पर क्रोधित क्यों नहीं होते? यह सही है कि उक्त सारी चीज़ें केवल हमारे ही देश में नहीं होती हैं. कई अन्य राष्ट्र तो इससे भी बुरी हालत में हैं, लेकिन वे इस्लाम या किसी अन्य धर्म का मज़बूत गढ़ होने का दावा भी नहीं करते. वे नेकनीयती के नाम पर गाहे-बगाहे गुस्से का दिखावा भी नहीं करते. वैसे भी हमारे सामने समस्याओं की कमी नहीं है और समस्याएं कम होने के बजाय लगातार बढ़ रही हैं. फिर हम शिक़ायत करने का बहाना क्यों तलाशते रहते हैं. हम बार-बार छोटी-मोटी ग़लतियों के पीछे अपनी ऊर्जा ख़र्च करने की जहमत क्यों उठाते हैं, जबकि उक्त ग़लतियां जानबूझ कर नहीं की जाती हैं और उनका उद्देश्य भी बुरा नहीं होता. हम अपने विचारों और विश्वास को लेकर और ज़्यादा मज़बूत नज़रिया क्यों नहीं अपना सकते. हमें ऐसा क्यों लगता है कि यदि तलवार और कटार लेकर तैयार नहीं रहे तो हमारे धर्म का अस्तित्व ही ख़तरे में पड़ जाएगा. यह और कुछ नहीं, बल्कि हमारे धर्म को लेकर ख़ुद हमारे कमज़ोर आत्मविश्वास की कहानी बयां करता है. भारत में इस्लाम आठ सौ से भी ज़्यादा सालों से वजूद में है, लेकिन इसके अस्तित्व पर कभी ख़तरा नहीं आया. केवल तिरसठ साल पहले इस्लाम के नाम पर हमने एक नए राष्ट्र का गठन किया और तबसे इस्लाम लगातार ख़तरे में ही है. हम थोड़ा सा लचीला रुख़ क्यों नहीं अपना सकते. यदि इस्लाम धर्म अट्ठारह सौ साल से भी ज़्यादा समय से अस्तित्व में है तो इसकी वजह हम या ओसामा बिन लादेन नहीं, बल्कि इस धर्म की आंतरिक शक्ति है. यह कोई भुरभुरा घड़ा नहीं, जो थोड़ा दबाव पड़ते ही टूटकर बिखर जाए और न ही इसकी रक्षा के लिए हमें हर समय तैयार रहने की ज़रूरत है. किसी भी हाल में इस्लाम सबसे ज़्यादा सुरक्षित तभी हो सकता है, जब हम अपने लिए एक सभ्य और समानता पर आधारित समाज का निर्माण करें. यह समाज ऐसा हो, जो लगातार ज्ञानवर्द्धन की दिशा में आगे बढ़ता रहे. पैगंबर मोहम्मद के प्रति अपनी श्रद्धा जताने का इससे बेहतर तरीक़ा और कुछ नहीं हो सकता कि समाज के हर तबके के लोगों के लिए हर क्षेत्र में एक समान मौक़े हों और सबके लिए आगे बढ़ने की पर्याप्त संभावनाएं मौजूद हों.

तुर्की आज भी उतना ही इस्लामिक है, जितना 1914 या उससे पहले था, लेकिन वह यूरोप के मरीज के रूप में जाना जाता था और तुर्क नाम को अभद्रता या गाली के रूप देखा जाता था. पर आज स्थितियां बदल चुकी हैं. तुर्की की हर आवाज़ को आज ध्यान से सुना जाता है, क्योंकि उसने अपनी हालत में आमूलचूल बदलाव कर लिए हैं. जब हम अपने मक़सद में कामयाब हो जाते हैं तो हमारा आत्मविश्वास ख़ुद-बख़ुद बढ़ जाता है. हमारे साथ भी ऐसा हो सकता है, लेकिन यह तभी होगा, जबकि हम काल्पनिक ख़तरों से लड़ने के बजाय उन समस्याओं के समाधान की ओर तवज्जो दें, जो वास्तविक हैं और जिनसे हमारी ज़िंदगियां प्रभावित होती हैं. ज़रा सोचिए कि क्या लाहौर उच्च न्यायालय विदेश मंत्रालय को संयुक्त राष्ट्र की जनरल एसेंबली में मानहानि का प्रस्ताव पेश करने का निर्देश दे सकता है? दुनिया में हर बड़ा काम, हर महान खोज ऐसे मस्तिष्क की देन है, जो स्पष्ट सोच रखता है. जो हर तरह के डर, अंधविश्वास या दमन से पूरी तरह दूर है. यह हर अच्छे काम की पहली शर्त है और इसके बग़ैर हम आगे बढ़ने की कल्पना भी नहीं कर सकते. धर्म कई हैं और हर धर्म की अपनी ताक़त एवं अहमियत है, लेकिन ज्ञान का सूत्र एक ही है. ज्ञान का यह सूत्र सदियों से मानवता की नई पीढ़ियों के लिए सुरक्षित रखा गया है और सभी सभ्यताओं ने, चाहे वह मिस्र की सभ्यता हो, ग्रीस की सभ्यता हो या फिर मुस्लिम या ईसाई, इसका अपने तरीक़े से इस्तेमाल किया है. जो सभ्यताएं इस सूत्र का सही इस्तेमाल कर पाई हैं, वही विकास कर पाई हैं. ज्ञान के इस सूत्र तक हम पहुंच पाएं, इसके लिए मस्तिष्क की एक निश्चित अवस्था का होना ज़रूरी है, हमारी आत्मा का एक ऊंचाई पर पहुंचना आवश्यक है. लेकिन हम अभी जिस दौर से गुज़र रहे हैं, उसे देखकर यही लगता है कि हम वहां तक पहुंच भी नहीं पाए हैं. क्या हम भविष्य में कभी वहां तक पहुंच पाएंगे? क्या हम उस रास्ते पर कभी अपने पैर आगे बढ़ा पाएंगे? जिस तरह की काल्पनिक दुनिया में हम जी रहे हैं, जिन बेसिर-पैर के ख़तरों से मुक़ाबला करने के लिए हम दिन-रात अपनी ऊर्जा ख़र्च करते रहते हैं, उसे देखकर तो यही कहा जा सकता है कि इस यात्रा की शुरुआत करने में भी हमें काफी वक़्त लगेगा.

अयाज आमिर

(लेखक पाकिस्तान के वरिष्ठ पत्रकार हैं)

feedback@chauthiduniya.com

इंसानों में आकर्षक दिखने की होड़ लगी रहती है, लेकिन मछलियों में ऐसा नहीं होता.

सूचना का अधिकार
जानने का अधिकार
जीने का अधिकार
चौथी दुनिया की पहल

सूचना के बदले कितना शुल्क

सूचना का अधिकार क़ानून के तहत जब आप कोई सूचना मांगते हैं तो कई बार आपसे सूचना के बदले पैसा मांगा जाता है. आपसे कहा जाता है कि अमुक सूचना इतने पन्नों की है और प्रति पेज की फोटोकॉपी शुल्क के हिसाब से अमुक राशि जमा कराएं. कई ऐसे मामले भी सामने आए हैं जिसमें लोक सूचना अधिकारी ने आवेदक से सूचना के बदले 70 लाख रुपये तक जमा कराने को कहा है. कई बार तो यह भी कहा जाता है कि अमुक सूचना काफी बड़ी है और इसे एकत्र करने के लिए एक या दो कर्मचारी को एक सप्ताह तक काम करना पड़ेगा, इसलिए उक्त कर्मचारी के एक सप्ताह का वेतन आपको देना होगा. ज़ाहिर है, सूचना न देने के लिए सरकारी बाबू इस तरह का हथकंडा अपनाते हैं. ऐसी हालत में यह ज़रूरी है कि आरटीआई आवेदक को सूचना शुल्क से संबंधित क़ानून के बारे में सही और पूरी जानकारी होनी चाहिए ताकि कोई लोक सूचना अधिकारी आपको बेवजह परेशान न कर सके. इस अंक में हम आपको आरटीआई फीस और सूचना के बदले दिए जाने वाले शुल्क के बारे में बता रहे हैं. यह सही बात है कि सूचना कानून की धारा 7 में सूचना के एवज़ में फीस की व्यवस्था बताई गई है, लेकिन धारा 7 की ही उप धारा 1 में लिखा गया है कि यह फीस सरकार द्वारा निर्धारित की जाएगी. इस व्यवस्था के तहत सरकारों को यह अधिकार दिया गया है कि वे अपने विभिन्न विभागों में सूचना के अधिकार के तहत दिया जाने वाला शुल्क आदि तय करेंगी. केंन्द्र और राज्य सरकारों ने इस अधिकार के तहत अपने-अपने यहां फीस नियमावली बनाई है और इसमें स्पष्ट किया गया है कि आवेदन करने से लेकर फोटोकॉपी आदि के लिए कितनी-कितनी फीस ली जाएगी. इसके आगे धारा 7 की उपधारा 3 में लोक सूचना अधिकारी की ज़िम्मेदारी बताई गई है कि वह सरकार द्वारा तय की गई फीस के आधार पर गणना करते हुए आवेदक को बताएगा कि उसे सूचना लेने के लिए कितनी फीस देनी होगी. उपधारा 3 में लिखा गया है कि यह फीस वही होगी जो उपधारा 1 में सरकार द्वारा तय की गई होगी. देश के सभी राज्यों में और केंद्र सरकारों ने फीस नियमावली बनाई है और इसमें आवेदन के लिए कहीं 10 रुपये का शुल्क रखा गया है तो कहीं 50 रुपये. इसी तरह दस्तावेज़ों की फोटोकॉपी लेने के लिए भी 2 रुपये से 5 रुपए तक की फीस अलग-अलग राज्यों में मिलती है. दस्तावेज़ों के निरीक्षण, काम के निरीक्षण, सीडी, फ्लॉपी पर सूचना लेने के लिए फीस भी इन नियमावालियों में बताई गई है. धारा 7 की उप धारा 3 कहती है कि लोक सूचना अधिकारी यह गणना करेगा कि आवेदक ने जो सूचना मांगी है वह कितने पृष्ठें में है, या कितनी सीडी, फ्लॉपी आदि में है. इसके बाद लोक सूचना अधिकारी सरकार द्वारा बनाई नियमावली में बताई गई दर से यह गणना करेगा कि आवेदक को सूचना लेने के लिए कुल कितनी राशि जमा करानी होगी. इसके लिए किसी लोक सूचना अधिकारी को यह अधिकार कतई नहीं दिया गया है कि वह मनमाने तरीके से फीस की गणना करे और आवेदक को मोटी रकम जमा कराने के लिए दवाब में डाले. ऐसे में जो भी लोक सूचना अधिकारी मनमाने तरीक़े से अपनी सरकार द्वारा तय फीस से कोई अलग फीस आवेदक से मांगते हैं, वह ग़ैरक़ानूनी है. इसी के साथ एक आवेदक को यह भी पता होना चाहिए कि सूचना क़ानून के प्रावधानों के मुताबिक़ अगर लोक सूचना अधिकारी मांगी गई सूचना तय समय समय के अंदर (30 दिन या जो भी अन्य समय सीमा हो) उपलब्ध नहीं कराता है तो आवेदक से सूचना देने के लिए कोई शुल्क नहीं मांग सकता. इसके आवेदक को जब भी सूचना दी जाएगी वह बिना कोई शुल्क लिए दी जाएगी.

हमें यह हमेशा याद रखना होगा कि लोक सूचना अधिकारी या कोई भी अन्य सरकारी कर्मचारी आम आदमी के टैक्स से वेतन लेने वाला व्यक्ति है. उसे यह वेतन दिया ही इसलिए जाता है कि वह आम आदमी के लिए बनाए गए विभिन्न क़ानूनों का पालन करते हुए कार्य करे. ऐसे में किसी एक क़ानून के पालन के लिए उसका वेतन किसी व्यक्ति विशेष से मांगना व्यवस्था की आत्मा के ही ख़िलाफ़ है. हमें उम्मीद है कि आप सभी पाठकों के लिए यह जानकारी काफी मददगार साबित होगी. और, आपलोग जम कर आरटीआई क़ानून का इस्तेमाल करते रहेंगे.

चौथी दुनिया ब्यूरो
feedback@chauthiduniya.com

यदि आपने सूचना क़ानून का इस्तेमाल किया है और अगर कोई सूचना आपके पास है, जिसे आप हमारे साथ बांटना चाहते हैं तो हमें वह सूचना निम्न पते पर भेजें. हम उसे प्रकाशित करेंगे. इसके अलावा सूचना का अधिकार क़ानून से संबंधित किसी भी सुझाव या परामर्श के लिए आप हमें ई-मेल कर सकते हैं या हमें पत्र लिख सकते हैं. हमारा पता है :

चौथी दुनिया
एफ-2, सेक्टर-11, नोएडा
(गौतमबुद्ध नगर) उत्तर प्रदेश
पिन -201301
ई-मेल : rti@chauthiduniya.com

ज़रा हट के

सुंदर होना गुनाह है

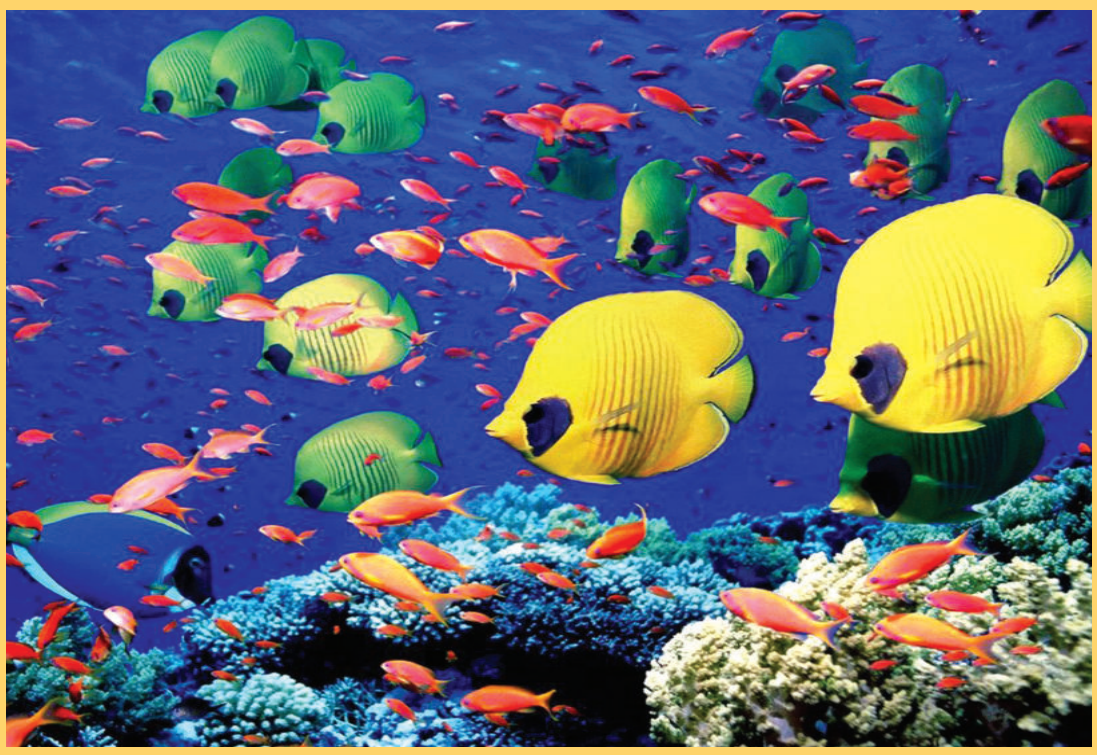

मनुष्यों में, चाहे वह पुरुष हो या महिला, सुंदर दिखने की चाहत से इंकार नहीं किया जा सकता. इंसानों में आकर्षक दिखने की होड़ लगी रहती है, लेकिन मछलियों में ऐसा नहीं होता. वैज्ञानिकों के एक नए शोध के मुताबिक़ मछलियों की एक ख़ास प्रजाति में सुंदर होना अच्छा नहीं माना जाता, क्योंकि इससे उनके शुक्राणु की गुणवत्ता प्रभावित होती है.

गप्पी प्रजाति की उष्ण कटिबंधीय मछलियों पर किए गए इस शोध में वैज्ञानिकों ने पाया है कि नर मछली जितना ख़राब दिखेगा, उसके शुक्राणु उतने ही बेहतर होंगे.

शोध से यह बात सामने आई है कि रंगीन और आकर्षक दिखने वाले नर मछली अपने शुक्राणु की गुणवत्ता की क़ीमत पर ख़ूबसूरत दिखते हैं. इस नतीजे के आधार पर वैज्ञानिकों का मानना है कि नर मछली की प्रजाति के आधार पर उनकी प्रजनन क्षमता का निर्धारण किया जा सकता है. अध्ययन के नतीजों को रॉयल सोसाइटी जर्नल में प्रकाशित किया गया है.

भूत-प्रेत भी होते हैं जातिवादी

जात-पात का भूत केवल हम इंसानों के सर ही चढ़कर नहीं बोलता, बल्कि ख़ुद भूत-प्रेतों की जमात भी इसका शिकार है. जातियों के बंटवारे सिर्फ़ मनुष्य जाति में ही नहीं हैं, बल्कि तथाकथित रूप से भूत-प्रेतों की भी जातियां होती हैं और उन जातियों के बाक़ायदा नाम भी होते हैं. ऐसा माना जाता है कि दुनिया में लगभग 84 लाख प्रकार के भिन्न-भिन्न शरीर वाले जीव रहते हैं. उतने ही प्रकार एवं विविधता वाले जीव अथवा प्राणी उस अदृश्य दुनिया या सूक्ष्म लोक में भी रहते हैं, जिसे आधुनिक विज्ञान प्रति विश्व कहता है.

यदि यक्ष, देवता, पितर, किन्नर आदि का अस्तित्व है, तो भूत-प्रेत, पिशाच, यक्ष, राक्षस आदि का वजूद भी असंदिग्ध है, क्योंकि यह विज्ञान की प्रयोगशाला में जांचा-परखा सच है कि हर वस्तु या घटक का सर्वथा विपरीत अस्तित्व भी अवश्य होता है. भूत-प्रेत, पिशाच, यक्ष, राक्षस आदि भी हैं और उनकी उपजातियां भी हैं. देवी-देवता आदि देव शक्तियां सत्य संघ मानी जाती हैं, जबकि भूत-प्रेत, पिशाच एवं मनुष्य भी असत्य संघ के अंतर्गत ही आते हैं.

वाममार्गीय तांत्रिक साधनाओं में मशान जगाना एवं भूत-प्रेत को वश में करना तथा मारण, मोहन उच्चाटन जैसी क्रियाएं की भी जाती रही हैं. किंतु, सात्विक एवं धर्मयुक्त बुद्धि से सोचा जाए तो ये क्रियाएं निश्चित रूप से वर्जित, हानिकारक एवं ख़तरनाक हैं. भूत-प्रेत को वश में करना या छाया पुरुष को सिद्ध करना निकृष्ट एवं निंदनीय कार्य है क्योंकि अपने सुख एवं उपभोग के लिए इन अदृश्य आत्माओं का प्रयोग करना घोर स्वार्थपूर्ण कार्य है. नोकल, मोकल, कलुआ, बेताल आदि इन अदृश्य आत्माओं की ही जातियां है.

चौथी दुनिया ब्यूरो
feedback@chauthiduniya.com

राशिफल

दिल्ली, 21 जून-27 जून 2010

मेष (21 मार्च से 20 अप्रैल)
निजी संबंधों में मज़बूती आएगी. घरेलू जीवन सुखमय रहेगा. यात्रा के प्रबल योग हैं. स्वास्थ्य का ध्यान रखें. देवदर्शन हो सकते हैं. आर्थिक मामलों में सफलता मिलेगी.

वृष (21 अप्रैल से 20 मई)
उपहार-सम्मान मिलने के भरपूर योग हैं. जीवनसाथी का सहयोग मिलेगा. आर्थिक पक्ष और अधिक मज़बूत होगा. यात्रा लाभप्रद रहेगी. स्वास्थ्य के प्रति सतर्क रहें.

मिथुन (21 मई से 20 जून)
यात्रा में विशेष सावधानी बरतें. रचनात्मक कार्यों में व्यस्त रहेंगे. कार्यक्षेत्र में प्रभाव एवं वर्चस्व में वृद्धि होगी. खानपान पर विशेष ध्यान रखें, अन्यथा दिक्कत हो सकती है.

कर्क (21 जून से 20 जुलाई)
आर्थिक पक्ष मज़बूत होगा. उपहार-सम्मान का लाभ मिल सकता है. यात्रा के भी योग बन रहे हैं. अधिकारी वर्ग का विशेष सहयोग मिलने की संभावना है.

सिंह (21 जुलाई से 20 अगस्त)
पारिवारिक-सामाजिक प्रतिष्ठा बढ़ेगी. संतान के दायित्व की पूर्ति होगी. मैत्री संबंधों में प्रगाढ़ता आएगी. स्वास्थ्य का ध्यान रखें. यात्रा के प्रबल योग बन रहे हैं.

कन्या (21 अगस्त से 20 सितंबर)
आर्थिक मामलों में जोख़िम न उठाएं. रुपये-पैसे के लेनदेन में सावधानी बरतें, व्यर्थ की समस्या आ सकती है. उपहार या सम्मान का लाभ मिल सकता है. पारिवारिक जीवन सुखमय होगा.

तुला (21 सितंबर से 20 अक्टूबर)
उपहार या सम्मान का लाभ मिलेगा. यात्रा-देशाटन की दिशा में लाभ मिलेगा. जीविका के क्षेत्र में प्रगति होगी. संतान के संबंध में सुखद समाचार मिलने के योग हैं.

वृश्चिक (21 अक्टूबर से 20 नवंबर)
रचनात्मक कार्यों में सफलता मिलेगी. पारिवारिक जीवन सुखमय रहेगा. शासन-सत्ता से सहयोग लेने में सफल रहेंगे. धार्मिक प्रवृत्ति में वृद्धि होगी. व्यय पर नियंत्रण बनाए रखें.

धनु (21 नवंबर से 20 दिसंबर)
अचानक यात्रा पर जाना पड़ सकता है. धन, सम्मान, यश एवं कीर्ति में वृद्धि होगी. पारिवारिक जीवन सुखमय रहेगा. उपहार-सम्मान का लाभ मिलेगा.

मकर (21 दिसंबर से 20 जनवरी)
वाहन प्रयोग में सावधानी बरतें. उपहार-सम्मान के योग हैं. सामाजिक दायित्व की पूर्ति होगी. शिक्षा के क्षेत्र में सफलता मिलेगी. अधीनस्थ अधिकारी कर्मचारी का सहयोग मिलेगा.

कुंभ (21 जनवरी से 20 फरवरी)
दुर्घटना होने की आशंका है. स्वास्थ्य के प्रति सचेत रहें. आर्थिक मामलों में सफलता मिलेगी. वाणी में मधुरता बनाए रखें. किसी मित्र-संबंधी से मुलाकात हो सकती है.

मीन (21 फरवरी से 20 मार्च)
मांगलिक दिशा में किया जा रहा प्रयास सफल होगा. जीविका के क्षेत्र में प्रगति होगी. किसी विवाद में न उलझें, हानि हो सकती है. स्वास्थ्य के प्रति सचेत रहें.

पंडित सुदर्शन
feedback@chauthiduniya.com

अलक़ायदा की पूरी विचारधारा जिहाद और राज्य की इसी विकृत अवधारणा पर आधारित है.

अमेरिका की दोहरी नीति में पिसता पाकिस्तान

अकदस वहीद

अपने रणनीतिक और सामरिक हितों की सुरक्षा के नाम पर अमेरिका दूसरे देशों के आंतरिक मामलों में दख़ल देता रहता है. उत्तरी से लेकर दक्षिणी ध्रुव तक दुनिया में कहीं भी कुछ हो तो किसी न किसी तरह वह अमेरिका के लिए चिंता का विषय बन जाता है. पाकिस्तान इससे अछूता नहीं है. सच्चाई यह है कि पाकिस्तान के साथ संबंधों के मामले में अमेरिका का रवैया मालिक की तरह रहता है, न कि एक दोस्त की तरह. अनुनय-विनय से लेकर ज़बरदस्ती तक, पाकिस्तान पर नज़र एवं दबाव में रखने और कूटनीतिक पराधीनता स्वीकार करने के लिए अमेरिका किसी भी हथियार के इस्तेमाल से नहीं हिचकता.

पाकिस्तान की भौगोलिक-सामरिक स्थिति, परमाणु क्षमता, कृषि एवं तकनीक के क्षेत्रों में वहां मौजूद संभावनाएं और इस्लामिक विचारधारा अमेरिकी नीति-निर्माताओं के लिए लगातार गहन चिंतन का विषय बना रहा है. अमेरिका पाकिस्तान को अपने आंतरिक मामलों से निपटने की छूट कभी नहीं दे सकता. पाकिस्तान अपनी नवजात अवस्था में ही था, जब अमेरिका ने भूतपूर्व सोवियत संघ के विस्तारवादी नज़रिये का हौव्वा खड़ा कर हमारे राष्ट्रीय हितों पर क़ब्ज़ा कर लिया. पाकिस्तान और अमेरिका के रिश्ते उतार-चढ़ाव के कई दौरों से गुज़र चुके हैं. सहयोग और प्रतिबंधों के अलग-अलग दौर में वे दोनों देशों में लगातार चर्चा का विषय बनते रहे हैं. साथ ही यह इनके संबंधों में आपसी विश्वास की कमी-बेशी के अलावा द्विपक्षीय, क्षेत्रीय एवं वैश्विक मुद्दों पर इनके विचारों में समानता और मतभिन्नता को भी एक साथ प्रतिबिंबित करता है. विश्व स्तर पर हैसियत के मामले में दोनों देशों के बीच गहरे अंतर के चलते पाकिस्तान की राजनीतिक व्यवस्था अमेरिका के साथ संबंधों को लेकर हमेशा दबाव में रही है. यह उस समय और भी ज़्यादा स्पष्ट हो गया, जब अफगानिस्तान में सोवियत सेना की मौजूदगी के ख़िलाफ़ 1980 के दशक की शुरुआत में अमेरिका, पाकिस्तान, सऊदी अरब और कई अन्य देशों ने साथ मिलकर एक इस्लामिक-अफ़ग़ानी प्रतिरोध खड़ा किया. पाकिस्तान में सीआईए की दखलंदाज़ी की शुरुआत अफगानिस्तान पर सोवियत संघ के हमले के बाद हुई. रूस के ख़िलाफ़ लड़ने के लिए सीआईए ने आईएसआई के साथ मिलकर अफ़ग़ानी जिहादी संगठनों को प्रशिक्षण देना शुरू किया. स्टीव कोल ने अपनी किताब घोस्ट वार्स: द सीक्रेट हिस्ट्री ऑफ सीआईए, अफ़ग़ानिस्तान एंड बिन लादेन फ्रॉम द सोवियत इंवेजन टू सितंबर 10, 2001 में इस बात पर काफी ज़ोर दिया है कि अमेरिकी गुप्तचर संस्थाएं उस समय पर्दे के पीछे रहकर सक्रिय रहना चाहती थीं. अमेरिका को यह डर सता रहा था कि अफ़ग़ानी जनता के प्रति उसके समर्थन की नीति के सार्वजनिक हो जाने से सोवियत संघ के साथ संबंधों में कड़वाहट बढ़ सकती है और कहीं यह दो विश्व शक्तियों के बीच सैन्य टकराव और अंत में तीसरे विश्व युद्ध का कारण न बन जाए.

अमेरिका पर्दे के पीछे रहकर कठपुतलियों को नचाने की अपनी नीति पर अडिग था तो पाकिस्तान पर ज़िम्मेदारियां बढ़ गईं. इस क्षेत्र में पैसा एवं हथियार पहुंचाने और बातचीत के लिए अमेरिका ने आईएसआई का इस्तेमाल किया. अमेरिका की इस नीति ने आईएसआई को अपने हिसाब से जंग के संचालन की अकल्पनीय स्वतंत्रता दे दी. आईएसआई ऐसे संगठनों और समूहों को समर्थन देने लगा, जो भविष्य में पाकिस्तानी हितों के संरक्षण में कारगर हो सकते थे. 1988 के आते-आते सोवियत संघ यह समझ चुका था कि अफ़ग़ानिस्तान में ख़र्च हो रही ऊर्जा और धन का औचित्य नहीं है. अफ़ग़ानिस्तान छोड़ने के सोवियत संघ के फ़ैसले में अमेरिका समर्थित स्वतंत्रता सेनानियों की बड़ी भूमिका थी. जैसे ही सोवियत सेना वहां से हटी, अमेरिका को लगा कि जैसे उसने लड़ाई जीत ली है और अफ़ग़ानिस्तान में उसकी रुचि कम होने लगी. तबसे ही पाकिस्तान को लेकर अमेरिका की नीतियां उसके आंतरिक मामलों के लिहाज़ से ज़्यादा प्रभावकारी साबित होती रही हैं. 1980 के दशक में अमेरिका की आर्थिक और सैन्य सहायता से पाकिस्तान में कई लोगों और संगठनों को फ़ायदा हुआ, जबकि कई अन्य को इससे नुकसान भी हुआ. सबसे ज़्यादा फ़ायदा जनरल ज़िया उल हक़ की सैन्य सरकार और इस्लामिक विचारधारा वाले राजनीतिक दलों एवं समूहों को हुआ. अफ़ग़ानिस्तान से सोवियत सेना को भगाने के लिए सीआईए एवं आईएसआई ने अमेरिकी धन और हथियारों के सहारे इस्लामिक कट्टरवादिता एवं आतंकवाद को जमकर बढ़ावा दिया. पाकिस्तान के पहले प्रधानमंत्री लियाकत अली ख़ान से लेकर बाद की तमाम सरकारों को सुरक्षा और आर्थिक सहयोग के लिए ऐसे समझौतों को मंजूरी देने को मजबूर होना पड़ा, जो पाकिस्तान के मुक़ाबले अमेरिका के लिए ज़्यादा मुफीद थे. दूसरे देशों के मामलों में दख़लंदाज़ी के लिए अमेरिका अपनी राजनीतिक और आर्थिक ताक़त के अलावा अपने ख़ुफ़िया आतंकी संगठन सीआईए का भी बख़ूबी इस्तेमाल करता रहा है. मिर्ज़ा असलम बेग ने अपने एक आलेख में लिखा है, पाकिस्तान में अलग-अलग सरकारों के दौर में अमेरिका महत्वपूर्ण पदों पर अपने विश्वसनीय एजेंटों को नियुक्त करता रहा है, ताकि वह पाकिस्तान की आंतरिक व्यवस्था को अपने हिसाब से ढाल सके. अपने पुराने मालिकों से मुक्ति पाने के लिए हमें अपनी पूरी ताक़त का इस्तेमाल करना होगा.

पाकिस्तान में अमेरिका की दख़लंदाज़ी कोई छुपी बात नहीं है. अमेरिका को यह लगता है कि सुपर पावर होने की हैसियत से दूसरे देशों के आंतरिक मामलों में दख़ल देना उसका कर्तव्य है. आम तौर पर यह माना जाता है कि अमेरिका ज़ुल्फिकार अली भुट्टो की लोकतांत्रिक ढंग से चुनी सरकार को इसलिए अस्थिर करना चाहता था, क्योंकि एक तो वह पाकिस्तान के हितों को लेकर ज़्यादा मुखर थे और दूसरा अमेरिका को यह डर लग रहा था कि भुट्टो अपने विचारों से अन्य इस्लामिक एवं विकासशील राष्ट्रों को प्रभावित कर रहे हैं. वह इस क्षेत्र में अमेरिकी हितों के लिए गंभीर चुनौती बनते जा रहे थे और उन्हें रास्ते से हटाने के अलावा कोई दूसरा विकल्प नहीं रह गया था. बिग्रेडियर टिमरिमजी ने अपनी किताब प्रोफाइल ऑफ इंटेलिजेंस में लिखा है कि 9 अगस्त, 1976 को अमेरिका के तत्कालीन विदेश मंत्री डॉ. हेनरी किसिंगर ने भुट्टो के साथ बातचीत की. इसका मक़सद पाकिस्तान को फ्रांस से परमाणु प्रसंस्करण प्लांट हासिल करने से रोकना था. हालांकि इसके लिए पहले ही सहमति बन चुकी थी और इससे संबंधित सुरक्षा मानकों को मानने के लिए पाकिस्तान फ्रांस एवं अंतरराष्ट्रीय परमाणु ऊर्जा आयोग की शर्तों को अपनी रज़ामंदी भी दे चुका था, लेकिन भुट्टो अपनी बात से नहीं डिगे और पाकिस्तान को एक परमाणु ताक़त बनाने के लिए फ्रांस के साथ हुए क़रार से पैर पीछे खींचने से उन्होंने इंकार कर दिया. किसिंगर को भुट्टो का यह ज़िद्दी रवैया नागवार गुज़रा और उन्होंने उन्हें स्पष्ट रूप से धमकियां दीं. इसमें कोई शक़ नहीं कि अमेरिका ने भुट्टो को नेस्तनाबूद करके ही दम लिया. 1976-77 में पाकिस्तान में पैदा हुए राजनीतिक और आर्थिक संकट का अमेरिका ने बख़ूबी इस्तेमाल किया. शुरुआत से ही अमेरिका पाकिस्तान की परमाणु संपत्तियों का विरोध करता रहा है और उन पर क़ब्ज़ा जमाने या उन्हें ध्वस्त करने के लिए कोशिश करता रहा है. एक ओर आतंकवाद के ख़िलाफ़ अपनी जंग में वह पाकिस्तान को एक अहम सहयोगी घोषित करता है तो दूसरी ओर इसकी परमाणु क्षमता को वह हमेशा संदेह की नज़र से देखता रहा है और पाकिस्तान को आतंकी गतिविधियों के साथ जोड़ने का कोई मौक़ा भी अपने हाथ से नहीं जाने देता. सालमन (2007) ने पाकिस्तान के परमाणु हथियारों पर एक रिपोर्ट तैयार की थी. इस रिपोर्ट में बड़ी सफ़ाई से परमाणु प्रसार के साथ आतंकवाद को जोड़ा गया है. रिपोर्ट में एक ओर अलक़ायदा और पाकिस्तान के जनजातीय क्षेत्रों में पैदा हो रहे आतंकी ख़तरे पर प्रकाश डाला गया है तो दूसरी ओर ए क्यू ख़ान मामले के ख़ुलासे के परिप्रेक्ष्य में परमाणु तकनीकों को चोरी-छुपे और अवैध रूप से दूसरे देशों एवं आतंकी संगठनों तक पहुंचाने की साज़िश के बारे में भी बताया गया है. इसमें परमाणु अप्रसार की कुछ हालिया कोशिशों की विफलता एवं ख़ास तौर पर उत्तर कोरिया और ईरान के ग़ैर ज़िम्मेदार रवैये के चलते अंतरराष्ट्रीय परमाणु अप्रसार संधि पर पड़ने वाले बुरे असर की चर्चा भी की गई है. सालमन की रिपोर्ट को आगे ले जाते हुए आतंकवाद पर एकरमैन की रिपोर्ट में यह बताया गया है कि अमेरिका को पाकिस्तान के पश्चिमोत्तर सीमा प्रांत पर ख़ास नज़र रखनी चाहिए, क्योंकि अन्य हिंसक इस्लामिक संगठनों के साथ अलक़ायदा भी यहां अपनी जड़ें गहरी जमा चुका है और संभव है कि अमेरिका के ख़िलाफ़ कार्रवाइयों को यहीं से अंजाम दिया जाए. 9/11 के हमले के बाद पाकिस्तान में अमेरिकी दख़लंदाज़ी में इज़ाफ़ा हुआ है और सीआईए के अलावा ब्लैक वाटर एवं डायनाकॉप जैसे संगठनों की सक्रियता भी बढ़ी है. हालात दिनोंदिन बद से बदतर होते जा रहे हैं और सीआईए एवं आईएसआई के बीच आपसी संबंध लगातार उलझते जा रहे हैं. समय आ गया है कि अमेरिका अपनी इस दोहरी नीति में बदलाव करे और पाकिस्तान के आंतरिक मामलों में दख़ल देने से बाज आए.

(लेखिका पाकिस्तान की युवा पत्रकार हैं)

feedback@chauthiduniya.com

आतंकवाद के ख़िलाफ़ जंग : रणनीति में ख़ामी

आतंकवाद के ख़िलाफ़ चल रही जंग की रणनीति में कुछ ऐसी आधारभूत ख़ामियां हैं कि इस जंग में जीत हासिल करने का भी शायद ही कोई फ़ायदा हो. युद्ध की रणनीति बनाते समय अमेरिका और पाकिस्तान इस तथ्य को नज़रअंदाज़ कर गए कि यह एक बहुआयामी लड़ाई है. अलक़ायदा और तालिबान इसे पूरे पेशेवर अंदाज़ में लड़ रहे हैं, उनकी रणनीति में इसके हर पहलू को शामिल किया गया है. लेकिन अमेरिका और पाकिस्तान केवल जवाबी सैन्य कार्रवाई पर ही ध्यान केंद्रित कर रहे हैं. वे इसके विचारधारात्मक, राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक पहलुओं की लगातार अनदेखी कर रहे हैं.

इस इलाक़े में आतंकवाद का मुख्य स्रोत विचारधारा और धार्मिक भावनाओं से निकलता है. अलक़ायदा और उसके सहयोगी संगठन इस्लामिक विचारधारा में जिहाद, धर्मयुद्ध, ग़ैर मुसलमानों और उनकी मदद करने वाले मुस्लिमों को ख़त्म करने की अवधारणा में विश्वास करते हैं. अफ़ग़ान युद्ध समाप्त हुए अर्सा बीत चुका है, लेकिन उसकी विचारधारा अभी भी जीवित है और एक पूरी पीढ़ी उसी के सिद्धांतों पर पली-बढ़ी है. अलक़ायदा ने इसी विचारधारा को प्रचारित करने की ज़िम्मेदारी अपने कंधों पर ली है और इसके लिए वह धर्मगुरुओं, इंटरनेट, सीडी और संचार के हर उपलब्ध साधनों की मदद ले रहा है. अलक़ायदा और उसके सहयोगी संगठनों के सिद्धांतों के विपरीत पारंपरिक इस्लामिक विचारधारा में मनुष्य मात्र के लिए प्रेम, करुणा, दया, इज़्ज़त और शांतिपूर्ण तरीके से इस्लाम के प्रसार की भावना समाहित है. अलक़ायदा से मुक़ाबले के लिए अमेरिका और पाकिस्तान को इस्लाम की इसी वास्तविक विचारधारा को हथियार के रूप में इस्तेमाल करना चाहिए था. हम मानें या न मानें, लेकिन इस्लामिक धर्मगुरुओं का बहुमत भी जिहाद, राज्य, धर्मयुद्ध और मुस्लिमों एवं ग़ैर मुस्लिमों के बीच संबंधों को लेकर इसी विचारधारा का समर्थन करता है. निराशाजनक बात यह है कि ऐसे अधिकांश लोगों का दमन करके चुप रहने के लिए मजबूर कर दिया जाता है या फिर उन्हें अप्रत्यक्ष रूप से अलक़ायदा जैसे संगठनों की विचारधारा को प्रचारित करने के लिए इस्तेमाल किया जाता है. विरले ही ऐसे लोग हैं, जो अलक़ायदा की विचारधारा से लड़ने का साहस जुटा पाते हैं और इसके लिए उन्हें अपनी ज़िंदगी को दांव पर लगाना पड़ता है.

अलक़ायदा की पूरी विचारधारा जिहाद और राज्य की इसी विकृत अवधारणा पर आधारित है. इस अवधारणा में इस बात पर ज़ोर दिया गया है कि काफिरों के ख़िलाफ़ जिहाद छेड़ने के लिए राज्य सत्ता से अनुमति की कोई जरूरत नहीं. इसमें यह भी बताया गया है कि इस्लाम को मानने वाले यदि मुश्किलों का सामना कर रहे हों, चाहे वे दुनिया के किसी भी हिस्से में क्यों न हों, की मदद करना न केवल जरूरी है, बल्कि धार्मिक फर्ज़ भी है. ऐसी सोच राज्य, सत्ता या राष्ट्रीय सीमाओं की अवधारणा को बेमानी साबित कर देती है. इसी सोच के आधार पर अफ़ग़ानियों के लिए पाकिस्तान की सीमा खोल दी गई थी, ताकि वे पाकिस्तान में रहकर अपनी गतिविधियां जारी रख सकें. मस्जिदों के इमामों ने अफ़ग़ानियों की राह आसान बनाने में अपनी भूमिका बख़ूबी निभाई. अमेरिका से मिली आर्थिक और तकनीकी मदद से पूरी दुनिया से जिहादियों के आगमन के लिए पृष्ठभूमि तैयार की गई. इसमें ओसामा बिन लादेन और उसके सहयोगी भी शामिल थे. पाकिस्तान ने न केवल इनका अतिथियों की तरह स्वागत किया, बल्कि नायकों की तरह प्रचारित भी किया. जिहाद की इस विचारधारा में इस बात पर भी ज़ोर दिया गया है कि बुराई से लड़ने के लिए ताक़त के इस्तेमाल से कोई गुरेज नहीं करना चाहिए. यही वह सोच है, जो अतिवादी धार्मिक संगठनों को न्यू इयर पार्टियों पर हमले या पेशावर में साइन बोर्डों को काला करने जैसी घटनाओं को अंजाम देने का आधार प्रदान करती है. हैरत की बात तो यह है कि अधिसंख्य मुस्लिम कौम और ख़ासकर युवा वर्ग इसी विचारधारा से प्रभावित है. वे इसकी सत्यता पर आंख मूंद कर भरोसा करते हैं. राजनीतिक और धार्मिक नेता, जो सार्वजनिक रूप से अलक़ायदा और उसकी विचारधारा का विरोध करते हैं, की निजी सोच भी जिहाद, राज्य, सत्ता और इस्लाम की इसी विकृत अवधारणा पर आधारित है. इसका परिणाम यह है कि अफ़ग़ानिस्तान और पाकिस्तान में रहने वाले बहुसंख्यक लोग अमेरिका के ख़िलाफ़ अलक़ायदा की जंग का समर्थन करते हैं.

पाकिस्तान की प्रमुख राजनीतिक पार्टियां भी न केवल इसी अवधारणा में विश्वास करती हैं, बल्कि खुलेआम इसे प्रचारित भी करती हैं. जो लोग इसे नहीं मानते, उनकी धार्मिक प्रतिबद्धता और विश्वास को कठघरे में खड़ा कर दिया जाता है. यहां यह सवाल पैदा होता है कि यदि अलक़ायदा की विचारधारा का समर्थन करने वाले लोगों को निशाना बनाया जाता है तो फिर इसे प्रचारित करने वाले संगठनों और व्यक्तियों के ख़िलाफ़ मुहिम क्यों नहीं छेड़ी जाती. यदि ऐसा नहीं किया जाता तो इन आतंकियों को पराजित करने के बारे में सोचा भी कैसे जा सकता है? जहां तक अमेरिका की बात है तो तमाम धार्मिक और राजनीतिक संगठन अमेरिका और उसके सहयोगियों को इस्लाम के सबसे बड़े शत्रु के रूप में प्रचारित करते हैं. इस्लाम धर्म को मानने वाली आम जनता ही नहीं, बल्कि संभ्रांत वर्ग भी पाकिस्तान के प्रति अमेरिकी नज़रिये को संदेह की दृष्टि से देखता है. अरब देशों में सरकार का हिस्सा बना अधिकारी वर्ग अमेरिका को एक सहयोगी के रूप में देखता है, लेकिन सच्चाई यह है कि अपने निजी जीवन में या सेवानिवृत्ति के बाद यह वर्ग भी अमेरिका को इस्लाम के दुश्मन के रूप में ही देखता है. यही सोच अमेरिका और उसके सहयोगियों के ख़िलाफ़ प्रतिशोध की भावना पैदा करती है, जिसे आतंकी अपने उद्देश्यों के लिए बख़ूबी भुनाते हैं. पिछले नौ सालों से अमेरिका इस्लामिक दुनिया में अपनी छवि सुधारने की हर मांग को लगातार अनसुना करता रहा है. वह इस बात की भी अनदेखी कर रहा है कि ऐसी सोच के क्या परिणाम हो सकते हैं. अलक़ायदा और दूसरे आतंकी संगठन अमेरिका की इस लापरवाही और उसके ख़िलाफ़ बने माहौल का फ़ायदा उठा रहे हैं. पाकिस्तान में भी अमेरिका के ख़िलाफ़ ऐसी ही भावना लगातार बलवती होती जा रही है. यही वजह है कि कोई भी सरकार क्यों न हो, यदि वह अलक़ायदा के ख़िलाफ़ अमेरिका की जंग में साथ खड़ी नजर आती है तो उसे जन समर्थन मिलने की कोई संभावना नहीं. चूंकि अलक़ायदा और अन्य आतंकी संगठन अमेरिका और उसके सहयोगियों के ख़िलाफ़ जंग का नेतृत्व कर रहे हैं, इसलिए आम जनता भी आतंकियों के ख़िलाफ़ सरकार की मुहिम में सुरक्षाबलों की कोई मदद नहीं कर रही.

सलीम सफी

(लेखक पाकिस्तान के वरिष्ठ पत्रकार हैं)

feedback@chauthiduniya.com

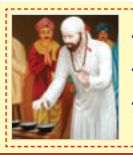

शिरडी के समीप पहुंचने पर उन्हें दूर से ही मस्जिद में फहराती ध्वजाएं दिखने लगीं, इन्हें प्रणाम कर अपने हाथ में पूजन-सामग्री लेकर वह मस्जिद पहुंचे और बाबा का यथाविधि पूजन कर वे द्रवित हो गए.

साई की महिमा अपार

श्री सद्गुरु साई बाबा के ग्यारह वचन

1. जो शिरडी आएगा, आपद दूर गाएगा.
2. चढ़े समाधि की सीढ़ी पर, पैर तले दुख की पीढ़ी पर.
3. त्याग शरीर चला जाऊंगा, भक्त हेतु दौड़ा आऊंगा.
4. मन में रखना दृढ़ विश्वास, करे समाधि पूरी आस.
5. मुझे सदा जीवित ही जानो, अनुभव करो, सत्य पहचानो.
6. मेरी शरण आ खाली जाए, हो कोई तो मुझे बताए.
7. जैसा भाव रहा जिस मन का, वैसा रूप हुआ मेरे मन का.
8. भार तुम्हारा मुझ पर होगा, वचन न मेरा झूठा होगा.
9. आ सहायता लो भरपूर, जो मांगा वह नहीं है दूर.
10. मुझ में लीन वचन मन काया, उसका ऋण न कभी चुकाया.
11. धन्य-धन्य व भक्त अनन्य, मेरी शरण तज जिसे न अन्य.

श्री साई बाबा शिरडी में अनेक वर्षों से निवास कर रहे हैं और वह एक पहुंचे हुए संत हैं. जब लक्ष्मी चंद कोपरगांव पहुंचे तो बाबा को भेंट देने के लिए कुछ अमरूद ख़रीदने का विचार किया. वह वहां के प्राकृतिक सौंदर्यमय दृश्य देखने में ऐसे मगन हुए कि उन्हें अमरूद ख़रीदने की सुध ही न रही. लेकिन जब वह शिरडी के समीप आए तो यकायक उन्हें अमरूद ख़रीदने की स्मृति हो आई.

ला लक्ष्मीचंद बम्बई के श्री वेंकटेश्वर प्रेस में नौकरी करते थे. नौकर छोड़कर वह रेलवे विभाग में आए और फिर वहीं मेसर्स रैली ब्रदर्स एंड कंपनी में मुंशी का काम करने लगे. उनका 1910 में श्री साई बाबा से संपर्क हुआ था. क्रिसमस से लगभग एक या दो माह पहले सांताक्रुज में उन्होंने स्वप्न में एक दाढ़ी वाले वृद्ध को देखा. यह बृद्ध चारों ओर से भक्तों से घिरा हुआ खड़ा था. कुछ दिनों बाद वह अपने मित्र दत्तात्रेय मंजुनाथ बिजूर के यहां दासगण का कीर्तन सुनने गए. दासगणू का यह नियम था कि वे कीर्तन करते समय श्रोताओं के सम्मुख साई बाबा का चित्र रख लिया करते थे. लक्ष्मीचंद को यह चित्र देखकर आश्चर्य हुआ, क्योंकि स्वप्न में उन्हें जिस वृद्ध के दर्शन हुए थे, उनकी आकृति भी ठीक इस चित्र के अनुरूप ही थी. इससे वे इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि स्वप्न में दर्शन देने वाले स्वयं शिरडी के श्री साईनाथ समर्थ के अतिरिक्त और कोई नहीं है. चित्र-दर्शन, दासगणू का मधुर कीर्तन और उनके संत तुकाराम पर प्रवचन आदि का कुछ ऐसा प्रभाव उन पर पड़ा कि उन्होंने शिरडी यात्रा का दृढ़ संकल्प कर लिया. भक्तों को चिरकाल से ही ऐसा अनुभव होता आया है कि जो सदगुरु या अन्य किसी आध्यात्मिक ज्ञान की खोज में निकलता है, उसकी ईश्वर सदैव सहायता करते हैं. उसी रात्रि को लगभग आठ बजे उनके एक मित्र शंकर राव ने उनका द्वार खटखटाया और पूछा कि क्या आप हमारे साथ शिरडी चलने को तैयार हैं.

लक्ष्मीचंद के हर्ष का पारावार न रहा और उन्होंने तुरंत ही शिरडी चलने का निश्चय किया. एक मारवाड़ी से पंद्रह रुपये उधार लेकर तथा अन्य आवश्यक प्रबंध कर उन्होंने शिरडी को प्रस्थान कर दिया. रेलगाड़ी में उन्होंने अपने मित्र के साथ कुछ देर भजन भी किया. उसी डिब्बे में चार अन्य यात्री भी बैठे थे, जो शिरडी के समीप ही अपने-अपने घरों को लौट रहे थे. लक्ष्मीचंद ने उन लोगों से साई बाबा के संबंध में कुछ पूछताछ की. तब लोगों ने उन्हें बताया कि श्री साई बाबा शिरडी में अनेक वर्षों से निवास कर रहे हैं और वे एक पहुंचे हुए संत हैं. जब वे कोपरगांव पहुंचे तो बाबा को भेंट देने के लिए कुछ अमरूद ख़रीदने का उन्होंने विचार किया. वे वहां के प्राकृतिक सौंदर्यमय दृश्य देखने में ऐसे मगन हुए कि उन्हें अमरूद ख़रीदने की सुध ही न रही. लेकिन जब वह शिरडी के समीप आए तो यकायक उन्हें अमरूद ख़रीदने की याद आई. इसी बीच उन्होंने देखा कि एक वृद्धा टोकरी में अमरूद लिए तांगे के पीछे-पीछे दौड़ती चली आ रही है. यह देख उन्होंने तांगा रुकवाया और उनमें से कुछ बढ़िया अमरूद ख़रीद लिए. तब वह वृद्धा उनसे कहने लगी कि कृपा कर यह शेष अमरूद भी मेरी ओर से बाबा को भेंट कर देना. यह सुनकर उन्हें विचार आया कि मैंने अमरूद ख़रीदने की जो इच्छा पहले की थी और जिसे मैं भूल गया था, उसी की इस वृद्धा ने पुनः स्मृति करा दी. श्री साई बाबा के प्रति उसकी भक्ति देख वह दोनों बड़े चकित हुए. लक्ष्मीचंद ने यह सोचकर कि हो सकता है कि स्वप्न में जिस वृद्ध के दर्शन मैंने किए थे, उनकी ही यह कोई रिश्तेदार हो, वे आगे बढ़े. शिरडी के समीप पहुंचने पर उन्हें दूर से ही मस्जिद में फहराती ध्वजाएं दिखने लगीं, जिन्हें देख प्रणाम कर अपने हाथ में पूजन सामग्री लेकर वह मस्जिद पहुंचे और बाबा का यथाविधि पूजन कर वे द्रवित हो गए. उनके दर्शन कर वह अत्यंत आनंदित हुए तथा उनके शीतल चरणों से ऐसे लिपटे, जैसे एक मधुमक्खी कमल के मकरंद की सुगंध से मुग्ध होकर उससे लिपट जाती है. तब बाबा ने उनसे जो कुछ कहा, उसका वर्णन हेमाडपंत ने अपने मूल ग्रंथ में इस प्रकार किया है, रास्ते में भजन करते और दूसरे आदमी से पूछते हैं. क्या दूसरे से पूछना. सब कुछ अपनी आंखों से देखना. काहे को दूसरे आदमी से पूछना. सपना क्या झूठा है या सच्चा. कर लो अपना विचार आप. मारवाड़ी से उधार लेने की क्या ज़रूरत थी. हुई क्या मुराद की पूर्ति. यह शब्द सुनकर उनकी सर्वव्यापकता पर लक्ष्मीचंद को बड़ा अचंभा हुआ. वह बड़े लज्जित हुए कि घर से शिरडी तक मार्ग में जो कुछ हुआ, उसका उन्हें सब पता है. इसमें विशेष ध्यान देने योग्य बात केवल यह है कि बाबा यह नहीं चाहते थे कि उनके दर्शन के लिए क़र्ज़ लिया जाए या तीर्थ यात्रा में छुट्टी मनाएं.

दोपहर के समय जब लक्ष्मीचंद भोजन को बैठे तो उन्हें एक भक्त ने सांजे का प्रसाद लाकर दिया, जिसे पाकर वे बड़े प्रसन्न हुए. दूसरे दिन भी वह प्रसाद की आशा लगाए बैठे रहे, परन्तु किसी भक्त ने वह प्रसाद न दिया, जिसके लिए वह अति उत्सुक थे. तीसरे दिन दोपहर की आरती पर बापू साहेब जोन ने बाबा से पूछा कि नैवेघ के लिए क्या बनाया जावे? तब बाबा ने उनसे सांजा लाने को कहा. भक्तगण दो बड़े बर्तनों में सांजा भर कर ले आए. लक्ष्मीचंद को भूख भी अधिक लगी थी. साथ ही उनकी पीठ में दर्द भी था. बाबा ने लक्ष्मीचंद से कहा कि तुमको भूख लगी है, अच्छा हुआ. कमर में दर्द भी है. लो, अब सांजे की ही करो दवा. उन्हें पुनः अचंभा हुआ कि मेरे मन के समस्त विचारों को उन्होंने जान लिया है. वस्तुतः वे सर्वज्ञ हैं. इसी यात्रा में एक बार उनको चावड़ी का जुलूस देखने का भी सौभाग्य प्राप्त हो गया. उस दिन बाबा क़फ से अधिक पीड़ित थे. उन्हें विचार आया कि किसी की नज़र लगने से तो क़फ न हो गया हो. दूसरे दिन प्रातःकाल जब बाबा मस्जिद गए तो शामा से कहने लगे कि कल जो मुझे क़फ से पीड़ा हो रही थी, उसका मुख्य कारण किसी की कुदृष्टि ही है. मुझे तो ऐसा प्रतीत होता है कि किसी की नज़र लग गई है, इसलिए यह पीड़ा मुझे हो गई है. लक्ष्मीचंद के मन में जो विचार उठ रहे थे, वही बाबा ने भी कह दिए. बाबा की सर्वज्ञता के अनेक प्रमाण तथा भक्तों के प्रति उनका स्नेह देखकर लक्ष्मीचंद बाबा के चरणों पर गिर पड़े और कहने लगे कि आपके प्रिय दर्शन से मेरे चित्त को बड़ी प्रसन्नता हुई है. मेरा मन आपके चरण कमल और भजनों में ही लगा रहे. आपके अतिरिक्त भी अन्य कोई ईश्वर है, इसका मुझे ज्ञान नहीं. मुझ पर आप सदा दया और स्नेह करें और अपने चरणों के दीन दास की रक्षा कर उसका कल्याण करें. आपके पावन चरणों का स्मरण करते हुए मेरा जीवन आनंद से व्यतीत हो जाए, ऐसी मेरी आपसे विनम्र प्रार्थना है. बाबा से आशीर्वाद तथा उदी लेकर वे मित्र के साथ प्रसन्न और संतुष्ट होकर मार्ग में उनकी कीर्ति का गुणगान करते हुए घर वापस लौट आए और सदैव उनके अनन्य भक्त बने रहे. शिरडी जाने वालों के हाथ वे उनको हार, कपूर और दक्षिणा भेजा करते थे.

चौथी दुनिया ब्यूरो
feedback@chauthiduniya.com

अचानक इतना बोलने की ज़रूरत क्यों पड़ गई? क्या यह नहीं हो सकता कि एक आदमी बोले और बहुत से उसे ध्यानपूर्वक सुनें.

समकालीन शायरों पर अहम किताब

अनंत विजय

ग़ज़ल और गीत हिंदी साहित्य की ऐसी विधाएं हैं, जिन्हें अब तक उतनी प्रतिष्ठा हासिल नहीं हो पाई है, जितनी उन्हें मिलनी चाहिए थी. हिंदी में दुष्यंत कुमार ने ग़ज़ल को एक नई ऊंचाई दी, प्रतिष्ठा भी दिलाई. लेकिन ग़ज़ल जानने वालों का कहना है कि हिंदी में यह विधा दुष्यंत के बाद ठहर गई है. अभी मुझे एक किताब मिली, समकालीन हिंदी ग़ज़ल–परंपरा और विकास, जिसके लेखक अनिरुद्ध सिन्हा हैं. इस किताब में लिखा है, ग़ज़ल को हिंदी की अछूत विधा मानकर हिंदी से अलग करने का काफी प्रयास किया गया, लेकिन पाठकीय स्वीकृति अपनी भावनात्मक छटपटाहट के साथ जुड़ी रही. ग़ज़ल और कविता के बीच जो विभाजन की रेखा खींची गई, वह स्वत: ही ध्वस्त हो गई. इसके लिए साहित्य के भीतर न तो कोई गुप्त आंदोलन चलाया गया और न ही आलोचकीय चापलूसी का सहारा लिया गया. ये चंद लाइनें बड़े सवाल खड़े करती हैं. पहला बड़ा सवाल तो यह उठता है कि हिंदी में किसने ग़ज़ल को अछूत विधा मानकर उसे हिंदी से अलग करने की साजिश रची. ज़ाहिर सी बात है कि पूरी किताब को पढ़ने के बाद जो तस्वीर उभरती है, वह यह कि हिंदी के आलोचकों ने ग़ज़ल को यथोचित स्थान नहीं दिया. नतीजा यह हुआ कि ग़ज़ल अपनी भाषा से दूर होती चली गई. छंदोबद्ध कविता का वर्चस्व तोड़ने के लिए ग़ज़लें लिखी गईं, लेकिन हुआ यह कि कविता में छंद के पक्षधर लेखकों ने उसकी उपेक्षा शुरू कर दी, लेकिन लेखक के मुताबिक़ ग़ज़ल को पाठकों का प्यार मिलता रहा. दूसरा बड़ा सवाल जो इस किताब में उठाया गया है, वह यह है कि ग़ज़ल ने आलोचकीय चापलूसी नहीं की. इस वाक्य का एक मतलब यह भी निकलता है कि बग़ैर आलोचकीय चापलूसी के कोई विधा साहित्य के केंद्र में नहीं आ सकती. मेरा मानना है कि अगर रचना और विधा में दम होगा तो उसे किसी भी तरह की चापलूसी की ज़रूरत नहीं है, लेकिन इसका यह मतलब कतई नहीं है कि ग़ज़ल में दम नहीं है. मैं पूरी विनम्रता से यह कहना चाहता हूं कि क्यों दुष्यंत कुमार की बात होती है. क्यों हमेशा कहा जाता है कि दुष्यंत की ग़ज़ल के बाद चर्चा ही नहीं हुई. क्या दुष्यंत के ख़िलाफ़ कोई साजिश नहीं हुई. क्या दुष्यंत ने आलोचकीय चापलूसी की. ख़ैर यह एक अवांतर प्रसंग है, जिस पर कभी और बात होगी.

> ज़ाहिर सी बात है कि पूरी किताब को पढ़ने के बाद जो तस्वीर उभरती है, वह यह कि हिंदी के आलोचकों ने ग़ज़ल को यथोचित स्थान नहीं दिया. नतीजा यह हुआ कि ग़ज़ल अपनी भाषा से दूर होती चली गई.

फ़िलहाल बात अनिरुद्ध सिन्हा की किताब, समकालीन हिंदी ग़ज़ल–परंपरा और विकास की. अनिरुद्ध सिन्हा नब्बे के दशक की शुरुआत में अच्छी कहानियां लिखा करते थे, जो उस वक़्त पत्र–पत्रिकाओं में प्रकाशित होकर पाठकों के साथ–साथ आलोचकों का भी ध्यान खींचती थीं. जहां तक मुझे याद पड़ता है कि नब्बे के दशक में ही मीनाक्षी प्रकाशन से अनिरुद्ध सिन्हा की कहानियों का संग्रह, और वे चुप हो गए, प्रकाशित हुआ था. उसी दौरान अनिरुद्ध ने एक लघु पत्रिका तर्जनी निकाली थी. मुंगेर में रहते हुए कहानी लिखकर राष्ट्रीय स्तर पर पहचान बना चुके अनिरुद्ध सिन्हा अचानक कहानी से विमुख हो गए और ग़ज़ल लिखने लगे. फिर तो अनिरुद्ध सिन्हा ग़ज़ल में इतने रमे कि उन्होंने ग़ज़ल गायकी में भी शोहरत हासिल की. ग़ज़ल में उस्ताद होने के बाद अब उन्होंने ग़ज़ल की आलोचना करते हुए किताब लिख डाली. पहले दो लेख, ग़ज़ल सबसे पहले सृजन की उत्पत्ति है एवं हिंदी में ग़ज़ल का उदय जानकारी देने वाले हैं. मेरे जैसा आदमी जिसकी ग़ज़ल के बारे में जानकारी कम है, उसके लिए दोनों लेख उपयोगी हैं. इन दो लेखों के अलावा अनिरुद्ध ने दुष्यंत कुमार से लेकर लोक श्रीवास्तव तक को कसौटी पर कसा है. शायरों के चयन में लेखक ने उदारता बरती है. इसमें कई अनाम किस्म के ग़ज़ल गो भी हैं. लेकिन दुष्यंत के बाद अनिरुद्ध ने उद्भ्रांत को रखकर चौंका दिया. लेखक ने लिखा है, उद्भ्रांत प्रगतिशील चेतना के शायर हैं. यह साहित्य के विपथन का समय है. ज़ाहिर है, इस समय साहित्य को विपथन से बचाने के लिए वैकल्पिक पथों के अन्वेषण का काम पूरी तरह सत्ता की राजनीति के भरोसे नहीं छोड़ा जा सकता.

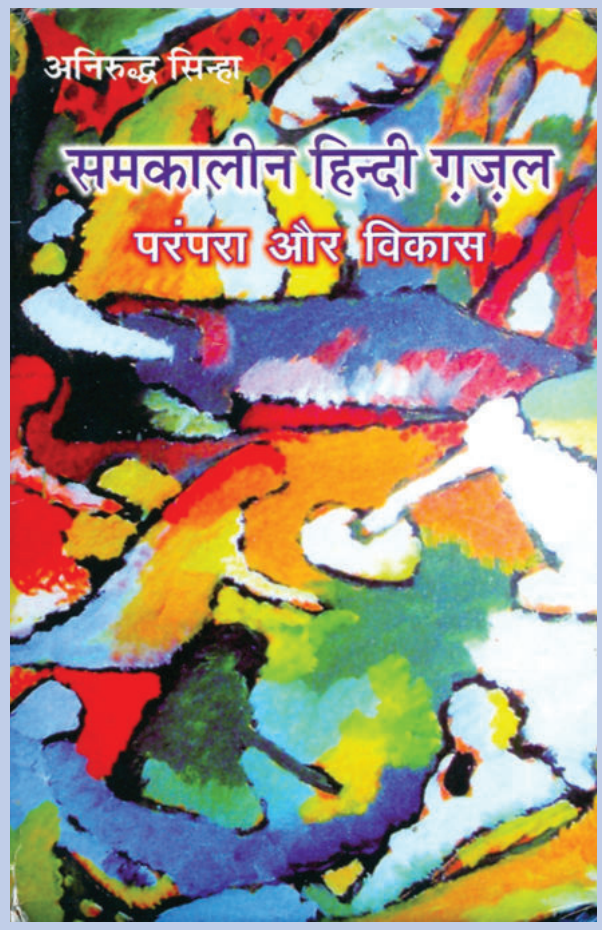

(लेखक आईबीएन–7 से जुड़े हैं)

feedback@chauthiduniya.com

पुस्तक अंश

मुन्नी मोबाइल

गतांक से आगे

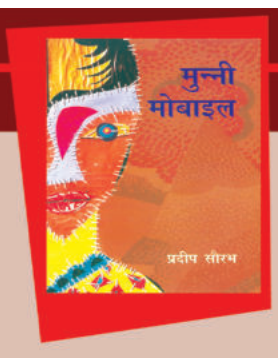

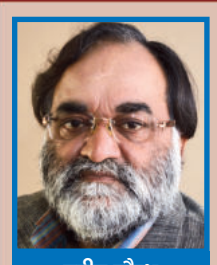

प्रदीप सौरभ

उन दिनों विश्वविद्यालय में छात्र राजनीति का अपराधीकरण तेज़ी से हो रहा था. राजनीति के नाम पर दादागिरी हो रही थी. नक्सलियों का छात्र संगठन इसके ख़िलाफ़ मोर्चा संभाल रहा था. गाहे–बगाहे विश्वविद्यालय परिसर में बम बज जाना कोई बड़ी घटना नहीं मानी जाती थी. बम धमाके के बाद भी कक्षाएं होती रहती थीं. गंगा–जमुनी सभ्यता का शहर बम की फैक्ट्री में तब्दील हो रहा था. कभी इलाहाबाद विश्वविद्यालय छात्रसंघ ने देश को बड़े नेता दिए थे. अब वह बड़े माफ़िया पैदा करने की संस्था बन रहा था. जातिवाद, क्षेत्रवाद जैसी बीमारी छात्र राजनीति में आ चुकी थी. नक्सली छात्र संगठन और अपसंस्कृति के पक्षधर गुटों में अक्सर मुठभेड़ हो जाती. आमने–सामने लट्ठ भी बज जाते. नक्सली छात्र ऐसे लोगों पर भारी पड़ते. वजह साफ थी कि नक्सली हिंसा का हथियार समाज को बदलने के लिए उठा रहे थे, जबकि दूसरी ओर की हिंसा प्रभुत्ववादी थी.

इसी राजनीतिक पृष्ठभूमि के चलते आनंद भारती अपने गले पर कट्टा रखने पर विचलित नहीं हुए थे. उन्होंने उस घटना के बारे में अंजू ठाकुर को सब कुछ बताने की सोची. परीक्षाओं की तैयारी के लिए छुट्टियां घोषित हो चुकी थीं. पढ़ाई का आख़िरी दिन था. क्लास ख़त्म होने पर उन्होंने पूरी घटना अंजू को बताई. अंजू पूरी ठकुराइन थी. उसके पिता बहुत बड़े वकील थे. उसको गुस्सा आया. आइए, अभी पकड़ते हैं उन बदमाशों को, वह जोश से बोली.

रहने दीजिए, आनंद भारती ने उसे समझाया, मैंने उन्हें ठीक से समझा दिया है.

अंजू के साथ मानसी भी खड़ी थी. उसे यह सब सुनकर गुस्सा आ रहा था. उसके हावभाव से लग रहा था कि उसे इस बात पर गुस्सा आ रहा था कि आनंद भारती जैसे व्यक्ति से ऐसी बदतमीज़ी क्यों की गई. इसके बाद मानसी से उनकी दूसरी मुलाक़ात रिज़ल्ट आने पर हुई, जब मानसी ने उन्हें प्रथम आने की बधाई दी.

एमए द्वितीय वर्ष के बीच में ही अंजू की शादी तय हो गई. उसका विश्वविद्यालय आना भी काफी कम हो गया था. आनंद आर्थिक रूप से अपने परिवारवालों पर कभी निर्भर नहीं रहे. माता–पिता से उनकी खटपट अक्सर रहती थी, पर जुझारू स्वभाव के आनंद भारती बहुत पहले से ही छोटे–मोटे लेख लिखते थे. उन्होंने कुछ ट्यूशनें भी कीं. अपनी ज़रूरतों को पूरा करने के लिए वह निरंतर संघर्ष करते रहे. उनकी ज़रूरतों

में उनकी विचारधारा का संतुष्ट होना सबसे ऊपर था. अब वह कभीकभार ही कक्षा में आते, आगे की सीट पर अब भी बैठते और पाते कि मानसी की आंखें उनके रजिस्टर पर टिकी होतीं.

विभागीय चुनाव सिर पर थे और अध्यक्ष पद के लिए देवाशीष का नाम आनंद भारती ने सुझाया था. इसी सिलसिले में वोट मांगने की प्रक्रिया में वह मानसी के पास भी आए थे. प्रथम वर्ष में मानसी मल्होत्रा के सबसे अधिक अंक आने के कारण विभाग के अध्यापक और विद्यार्थियों में उसका नाम अब चर्चित था. आनंद भारती ने मानसी से भी कनवेसिंग का आग्रह किया था और मानसी ने अच्छे भाषण भी दिए थे. देवाशीष जीत गए थे और मानसी की निगाहों में आनंद भारती का व्यक्तित्व सिमट गया था.

आनंद जान गए थे कि मानसी उनके व्यक्तित्व से प्रभावित है. शायद यही कारण रहा होगा कि कक्षाओं में दिए गए नोट्स को पाने के लिए वह मानसी से रजिस्टर ले जाते और न जाने कब ऐसा हो गया कि मानसी अपने नोट्स में कार्बन लगाकर आनंद भारती के लिए भी नोट्स बनाने लग गई. आनंद अपने रजिस्टर के पहले पृष्ठ पर कविता की दो चार पंक्तियां अवश्य लिखा करते थे और एक दिन उन्होंने देखा कि उनके रजिस्टर पर लिखी पंक्तियों के साथ काग़ज़ का एक और टुकड़ा नत्थी था, जिस पर लिखा था, हर सफ़े पे रहती हैं, तुम्हारी अपनी बातें. लाओ हाशिए में कुछ हम भी तो कह दें... और फिर मानसी का कुछ न कुछ लिखकर देना एक आम सी बात हो गई थी. आनंद को याद है कि एक बार मानसी के रजिस्टर में उन्होंने भी लिख दिया था, कितना अच्छा लगता है कविता में तुम्हारा आना. बातें करना, हंसना, खिलखिलाना...

अगले अंक में जारी...

सिर्फ़ बोलने के लिए बोलना!

इन दिनों जितना बोला जा रहा है, उतना शायद इतिहास में कभी नहीं बोला गया. कौन बोल रहा है, क्यों बोल रहा है, क्या बोल रहा है, समझ में नहीं आ रहा. बोला जाना चीखे जाने में तब्दील हो चुका है. लोग इतनी ताक़त से माइक में चिल्ला रहे हैं कि बोला जाना शोर मचाने की श्रेणी में आ गया है. कोई ख़ास वजह नहीं है, फिर भी बोला जा रहा है. कोई सुनने वाला नहीं है, फिर भी बोला जा रहा है. मंदिरों, मस्जिदों, बाज़ारों, स्कूलों, गोष्ठियों एवं सभाओं में बोलने की होड़ मची है. हर आदमी इसी कोशिश में है कि बस एक बार माइक हाथ में आ जाए. जिसके हाथ में माइक है, वह छोड़ने को तैयार नहीं और जिसके हाथ में माइक नहीं है, वह पीछे हटने को तैयार नहीं. जिनके पास बोलने को कुछ नहीं है, वे भी बोलने की लाइन में हैं. जिनके पास बोलने का सलीका नहीं है, वे भी बोलने पर आमादा हैं. यह तय करने वाला कोई नहीं है कि कब किसे कहां और क्या बोलना है. जिसे श और स में अंतर नहीं मालूम, वह भी बोल रहा है. कक्षा में जो हर प्रश्न के उत्तर में सिर्फ़ चुप रहा, वह सवाल पर सवाल कर रहा है. शब्दों की इतनी फ़िज़ूलख़र्ची कभी नहीं की गई, जितनी आज की जा रही है. पूरे देश में बोलने के वायरस फैल गए हैं, बीमारी लग गई है. एक आदमी बोलता है, फिर उसके बोलने पर पांच और फिर उनके बोलने पर पच्चीस आदमी बोलते हैं. ज्ञानी को छोड़कर हर आदमी बोल रहा है.

अचानक इतना बोलने की ज़रूरत क्यों पड़ गई? क्या यह नहीं हो सकता कि एक आदमी बोले और बहुत से उसे ध्यानपूर्वक सुनें. वह एक बोलने वाला भी कोई ज्ञानी–ध्यानी होना चाहिए. यह कौन सा मापदंड हुआ कि कल तुमने बोला था, इसलिए आज हम बोलेंगे. गोष्ठियों में लोग सुनने नहीं, सिर्फ़ बोलने जाते हैं. महत्वपूर्ण बातें महत्वहीन बातों के शोर में दबी जा रही हैं. हर दूसरा आदमी भाषण देने की मुद्रा में है. आठवीं फेल आदमी केंद्रीय बजट पर टिप्पणी कर रहा है, वित्त मंत्री की आलोचना कर रहा है. मंच अयोग्य आदमी की मुट्ठी में है, योग्य आदमी को नेपथ्य में धकेल दिया गया है. योग्यता अल्पमत में है. बोलने का नशा इस कदर चढ़ा है कि यह भी होश नहीं कि क्या बोला जा रहा है, क्यों बोला जा रहा है? बस एक बार माइक हाथ में आ भर जाए, पूरे माहौल का सत्यानाश तय समझिए. कुछ नहीं बोल पाएंगे तो यही शोर मचाते रहेंगे, कृपया शांति बनाए रखें. विचार गायब हैं, भाषा लुप्त है, फिर भी बोला जा रहा है. बोलने वाला बोलता है कि यही विचार है, यही भाषा है तो वह ऐसा बोलने के लिए स्वतंत्र है. वह इस बकबक को विचार बोल सकता है. शायद उसे मालूम न हो कि विचारधारा जैसी कोई चीज़ होती भी है. बिन भाषा और बिन शब्द के बोलने वाले बोले जा रहे हैं. उनके भेजे में बुद्धि नहीं है तो क्या हुआ, मुट्ठी में पैसा तो

है. विचारहीन और विचारवान दोनों बोलते हैं, लेकिन समाचारपत्र के मुख्य पृष्ठ पर कौन होता है और तीसरे पेज पर कौन, सर्वविदित है. अनाप–शनाप बोले जाने से आएदिन बड़ी विचित्र स्थिति निर्मित हो जाती है, जब कोई कहता है कि मेरे बोलने का अभिप्राय यह नहीं था, ग़लत अर्थ निकाला जा रहा है. अरे भैया, पहले ही अर्थवान बोलो, ताकि अर्थ ढूंढने की आवश्यकता ही न पड़े. पहले बोलना कठिन और सुनना आसान होता था, लेकिन आज बोलना सरल और सुनना कठिन है. पहले चुनिंदा लोग बोलते थे और हज़ारों सुनते थे, आनंद लेते थे, तालियां बजाते थे, वाह–वाह करते थे, क्योंकि जो बोला जाता था, वह सार्थक होता था, तर्कसंगत होता था, देश–समाज और व्यक्ति के लिए वैसा बोला जाना आवश्यक था. बोलने की कला पर नहीं, विषय पर ध्यान दिया जाता था. अब बोला नहीं, बका जा रहा है. चिंता की बात यह कि ऐसा बोला क्यों जा रहा है, लेकिन उससे ज़्यादा चिंता की बात यह कि ऐसा सुना क्यों जा रहा है? पहले सुनने का अवसर नहीं मिलता था तो लोग नाराज़ हो जाते थे कि हम सुनने से वंचित रह गए, लेकिन अब बोलने का अवसर नहीं मिलता है तो लोग नाराज़ हो जाते हैं. लाइट–माइक–कुर्सी का पैसा देकर बोलने का अवसर ख़रीदा जा रहा है. बोला जाना समस्या बनता जा रहा है. हमें ध्यान देना होगा कि चारों तरफ़ इतना बोला क्यों जा रहा है? इसकी वजह क्या है, आवश्यकता क्या है, उपयोगिता क्या है, लाभ क्या है और अगर नहीं बोला जाएगा तो क्या नुक़सान होगा? जो भाषण, प्रवचन, समीक्षा एवं उद्घोषणा कर रहा है, उसमें ऐसा क्या गुण है? कुछ ऐसा करना होगा कि इस अनावश्यक बोले जाने में कमी आए. बोलने वाले से पूछा जाना चाहिए कि उसने पिछली बार जो बोला था, उस पर कितना अमल हुआ? यदि इस स्वतंत्र देश में कोई बोलने के लिए आज़ाद है तो हम भी तो सुनने के लिए बाध्य नहीं हैं. हमें अनुपस्थित रहकर ऐसे कार्यक्रमों को असफल कर देना चाहिए. अगर हम बोलने वाले से उसके बोलने का हिसाब नहीं ले सकते, तो कम से कम उसकी कथनी और करनी का हिसाब तो लगा सकते हैं, जांच–परख तो सकते हैं.

चुनावी सभाओं में खिलाड़ी और अभिनेता बोल रहे हैं, साहित्यिक गोष्ठियों में नेता बोल रहे हैं, पुस्तक विमोचन के कार्यक्रम में उद्योगपति बोल रहे हैं... यह क्या गड़बड़ घोटाला है? मतलब बोलना मज़ाक बनकर रह गया है. क्या अब समय नहीं आ गया है कि जब एक आम आदमी सुनने से इंकार कर दे? क्या कोई ऐसा सिस्टम तैयार करने की आवश्यकता नहीं है, जिसके तहत केवल मान्यताप्राप्त लोग ही सार्वजनिक तौर पर बोल सकें. बोलना चल रही व्यवस्था में दख़ल देना होता है और इतना महत्वपूर्ण काम हर ऐरा–गैरा कैसे कर सकता है? बोलना, कम बोलना और न बोलना, तीनों अलग–अलग चीज़ें हैं और तीनों का अपना महत्व है. मैं बोलने के ख़िलाफ़ नहीं हूं, कम बोलने का हिमायती नहीं हूं और चुप रहने का समर्थक भी नहीं. ये चीज़ें औजार और हथियार हैं, इनका इस्तेमाल सोच–समझ कर करना होगा. अगर बहुत बोलने की ज़रूरत है तो वहां कम क्यों बोलना? चुप रहने से काम बन सकता है तो थोड़ा सा क्यों बोलना? हमें बोलने को हस्तक्षेप मानना चाहिए, इसलिए कहीं भी किसी का भी बोलना गंभीर और आवश्यक होना चाहिए.

जोश में बोले गए को बोलना न माना जाए, सिर्फ़ होश में बोलने वालों को ही सुना जाना चाहिए. ऐसी व्यवस्था होनी चाहिए कि हर किसी को बोलने का अधिकार न मिले. बोलने की न्यूनतम योग्यता होनी चाहिए, मापदंड़ होने चाहिए. जो नेता चुनाव हार जाए, उसे बोलने का हक नहीं होना चाहिए. जिस उद्योगपति ने समय पर टैक्स न भरा हो, उसे बोलने का हक़ नहीं. बोलने वाले के पिछले रिकार्ड देखे जाने चाहिए कि वह अपनी पहले कही गई बातों पर अड़िग है कि नहीं. मैं यह नहीं कहता कि बोलने पर पूरी तरह पाबंदी लगा देनी चाहिए. कमज़ोरी–ख़राबी के ख़िलाफ़ यदि बोला नहीं जाएगा तो देश में कानून व्यवस्था नामक कोई चीज़ ही नहीं रहेगी. मैं जिसका विरोध कर रहा हूं, वह अनावश्यक बोला जाना है, गैर ज़िम्मेदाराना बोला जाना है, चर्चा में रहने के लिए बोला जाना है और अपना अस्तित्व बचाए रखने के लिए बोला जाता है. बोलने के लिए सिर्फ़ ज़ुबान ही नहीं, दिमाग भी होना चाहिए.

बोलना एक आवश्यक प्रतिक्रिया है, इसके बिना दुनिया का काम चल ही नहीं सकता. भोजन भी एक आवश्यकता है, लेकिन उसकी भी सीमा होती है. अधिक खाने से नुकसान है. नींद भी आवश्यक है, लेकिन सिर्फ सोते रहना सब कुछ समाप्त कर देगा. परिश्रम बहुत जरूरी है, लेकिन विश्राम नहीं करेंगे तो क्या होगा? यही फार्मूला बोलने पर भी लागू होता है. बोलने वालों से निवेदन है कि वे अपने बोलने पर नियंत्रण रखें, पहले स्वयं की पड़ताल करें, ख़ुद की ख़बर लें, ख़ुद को मुजरिम मानकर ख़ुद की अदालत में पेश करें और फ़ैसला सुनाएं. सुनने वालों से कहना है कि सार्थक बोलने वालों को ध्यानपूर्वक सुनकर उनका समर्थन करें और अनावश्यक बोलने वालों का बहिष्कार किया जाए.

अख्तर अली
feedback@chauthiduniya.com

मोबाइल फोन पर इस प्रकार का पहला सोशल गेमिंग, गेम्स एवं सोशल नेटवर्क के एकीकरण की दिशा में किया गया पहला प्रयास है.

विनकॉम के साथ बिपाशा

विनकॉम मोबाइल ने बिपाशा बसु से करार करने के साथ ही शेनझेन में अपनी चीनी सहायक कंपनी की स्थापना की घोषणा की है. 2500 करोड़ रुपये वाले एसएआर समूह, जिसने हाल में मुंबई में डुअल सिम वाले मोबाइल फोन के 7 मॉडल लांच किए थे, के नए उपक्रम विन टेलीकॉम ने बाज़ार में अपने ब्रांड की मौजूदगी को सशक्त बनाने के लिए बिपाशा बसु को उतारा है. इस मौक़े पर कंपनी के संस्थापक एवं चेयरमैन राकेश मल्होत्रा ने कहा कि मुंबई में जब हमने अपने मोबाइल हैंडसेट लांच किए थे, तबसे लेकर अब तक हमें जिस तरह की प्रतिक्रियाएं मिली हैं, उनसे हम काफ़ी उत्साहित हैं. मल्होत्रा ने कहा बिपाशा जैसी प्रतिभाशाली एवं स्टाइलिश अभिनेत्री को ब्रांड एंबेसडर के रूप में पाकर उन्हें बहुत प्रसन्नता है. बिपाशा बसु ने कहा कि उन्होंने विनकॉम के साथ जुड़ने का फ़ैसला इसलिए किया, क्योंकि जीवन के प्रति जो उनका नज़रिया है, उसे यह ब्रांड प्रदर्शित करता है. वह इसके हैंडसेट से बहुत प्रभावित हैं, क्योंकि ये आज के युवाओं के सही भावों को ग्रहण करते हैं. स्टाइलिश लुक एवं फीचर्स के साथ बनाए गए विनकॉम मोबाइल में सभी को लुभाने वाली विशेषताएं हैं.

हाल में लांच किए गए हैंडसेट यूटिलिटी, मल्टीमीडिया और क्वालिटी फोन का मिश्रण हैं. इनमें उच्च क्षमता वाली बैटरी, आकर्षक लुक और कई भाषाओं की मौजूदगी है. मेगा पिक्सल कैमरा, वीडियो प्लेयर, वायरलेस एफएम, एक्सपेंडेबल मेमोरी एवं दूसरे अन्य फीचर्स इन्हें एक परफेक्ट हैंडसेट की शक्ल प्रदान करते हैं. इन मोबाइलों की क़ीमत 1500 रुपये से शुरू होकर 5000 रुपये तक है. कंपनी के सह संस्थापक एवं प्रबंध निदेशक अरविंद आर वोहरा ने कहा कि विनकॉम के उत्पाद भारतीय ग्राहकों के लिए न केवल शहरों, बल्कि देश के दूरस्थ इलाक़ों में भी उपलब्ध होंगे. कंपनी चालू वित्तीय वर्ष के अंत तक टॉप थ्री भारतीय ब्रांडों में जगह बनाने के लिए प्रतिबद्ध है. विनकॉम पूरे भारत में 400 से ज़्यादा वितरकों एवं 25 हज़ार से ज़्यादा खुदरा विक्रेताओं के ज़रिये अपने उत्पादों को लांच करने वाला मोबाइल फोन का पहला ब्रांड है. विनकॉम ने शेनझेन में अपनी सहायक कंपनी स्थापित करने की भी घोषणा की. वह चीन में डिज़ाइन इंजीनियरिंग एवं निर्माण परिचालन शुरू करने के लिए पूर्ण स्वामित्व वाली सहायक कंपनी शुरू करने वाली पहली कंपनी बन गई है. उसे उम्मीद है कि अगले एक साल में चीन में उसकी सहायक कंपनी में 200 से अधिक लोग कार्यरत होंगे. चाइना ऑपरेशंस के सह संस्थापक एवं मुख्य कार्यकारी अधिकारी लिन झोइ ने बताया कि उन्होंने चीन में युवा एवं प्रतिभाशाली डिज़ाइन और इंजीनियरिंग पेशेवरों की टीम बनाई है.

फैशन का टशन

आजकल की फैशनेबल कुड़ियों को स्टाइलिश और फ़ंकी चीजें ही लुभाती हैं, चाहे उनकी ड्रेस हों या ड्रेस के साथ पहने जाने वाले एक्सेसरीज. लड़कियों को भारी-भरकम ज्वेलरी की बजाय हल्के-फुल्के स्टड्स और एक्सेसरीज ही पसंद आते हैं, लेकिन फैशन के साथ क़दम मिलाकर चलने वाली युवतियों के लिए इन एक्सेसरीज का ट्रेंडी होना ज़रूरी होता है. अगर इनके दाम कम हों, तो क्या कहने!

आधुनिक युवतियों को लुभाने के लिए ट्रेंडी बॉबल्स की ज्वेलरी इन दिनों बतौर एक्सेसरी ख़ूब चल रही है. चाहे ड्रेस एथनिक हो या वेस्टर्न, सोबर हो या मॉडर्न, जंक ज्वेलरी हर ड्रेस पर ख़ूब जंचती है. ट्रेंडी बॉबल्स के एक्सेसरीज युवाओं की पॉकेट मनी में बिल्कुल फिट बैठती है. इस ब्रांड में बोल्ड और मॉडर्न पैटर्न के साथ अलग-अलग शेप भी उपलब्ध हैं. विभिन्न रंगों में उपलब्ध अलग-अलग टेक्सचर और मैटेरियल में बने ब्रेसलेट, नेकलेस, इयर रिंग एवं पेंडेंट ख़ास स्टाइल स्टेटमेंट बनाते हैं. इन दिनों जब मिक्स एंड मैच के फैशन का जादू चल रहा है. इसी ट्रेंड पर मिक्स एंड मैच एक्सेसरीज भी चल रहे हैं. ट्रेंडी बॉबल्स की परफेक्ट चिक ज्वेलरी आपकी पर्सनालिटी में और भी निख़ार ला देती है. उक्त एक्सेसरीज बदलते फैशन ट्रेंड को ध्यान में रखकर डिज़ाइन किए गए हैं. इन्हें पहन कर आप ख़ुद को टफ लुक दे सकेंगी और अपनी हिप-हॉप इमेज भी बरकरार रख सकेंगी. आमतौर पर देखा जाता है कि ज़्यादा उम्र की महिलाओं के लिए इस तरह की फंकी ज्वेलरी बाज़ार में उपलब्ध नहीं होती, लेकिन ट्रेंडी बॉबल्स न सिर्फ युवा लड़कियों के लिए तैयार किए गए हैं, बल्कि इन्हें आधुनिक विचारों वाली उम्रदराज औरतों को भी ध्यान में रखकर बनाया गया है. इनकी क़ीमत 69 रुपये से शुरू होकर 200 रुपये तक है.

एयरसेल की सोशल गेमिंग

भारत के मोबाइल उपभोक्ताओं के लिए पहली सोशल गेमिंग की पेशकश की गई है. राष्ट्रीय स्तर पर टेलीकॉम सेवाएं प्रदान करने वाली कंपनी एयरसेल एवं आईबीआईबीओ डॉटकॉम ने इस सोशल गेमिंग की शुरुआत करते हुए एयरसेल पॉकेट इंटरनेट पर ग्रेट इंडियन पार्किंग वार्स गेम की पेशकश की है, जिसे बाद में बढ़ाकर गेम्स का एक कैटलॉग बना दिया जाएगा. उपभोक्ता इस पर फेसबुक या आईबीआईबीओ डॉटकॉम आईडी द्वारा लॉग ऑन करके गेम खेल सकेंगे. एयरसेल के मुख्य परिचालन अधिकारी गुरदीप सिंह ने कहा कि उपभोक्ताओं के मोबाइल फोन पर सोशल गेमिंग, गेम्स एवं सोशल नेटवर्क के एकीकरण की दिशा में किया गया इस प्रकार का यह पहला प्रयास है. इस खेल को उपभोक्ता गतिशील अवस्था में भी खेल सकते हैं. कंपनी अपने ग्राहकों को गेमिंग के जरिए कहीं भी किसी भी समय सोशियली कनेक्टेड रहने का अवसर प्रदान करना चाहती है. ग्रेट इंडियन पार्किंग वार्स में उपभोक्ता गली के मालिक की भूमिका में होंगे और उन्हें एवं उनके दोस्तों को दिए गए कार्य पूरे करने होंगे. इसकी एवज में उपभोक्ताओं को अंक दिए जाएंगे, जिससे दोस्तों के बीच प्रतिस्पर्द्धा बढ़ेगी. इस गेम का महत्वपूर्ण पहलू यह है कि उपभोक्ताओं के लिए सोशल एलीमेंट एक उत्प्रेरक की भूमिका निभाएगा और मित्रों को प्रतिदिन सोशल नेटवर्क पर जाने के लिए प्रेरित करेगा. इसमें उपभोक्ताओं के लिए अपने नेटवर्क पर दोस्त बनाने, नई कार ख़रीदने, उनकी गलियों में पार्क की गईं कारों का चालान काटने, दूसरी गलियों में पार्किंग स्थान को ब्लॉक करने जैसे कई खेल शामिल होंगे, जो उन्हें व्यस्त रखेंगे. इस खेल के लिए किसी भी प्रकार के डाउनलोड की आवश्यकता नहीं है और उपभोक्ता इस खेल का आनंद नि:शुल्क उठा सकेंगे. इसके लिए किसी तरह की कोई सब्सक्रिप्शन फीस नहीं होगी. सिर्फ़ उपभोक्ताओं को अपने वैप संयोजित हैंडसेट्स में एयरसेल पॉकेट इंटरनेट का उपयोग करना होगा.

चौथी दुनिया ब्यूरो
feedback@chauthiduniya.com

बिग टीवी और एलजी एक साथ

देश के अग्रणी डायरेक्ट टू होम डीटीएच सेवा प्रदाता रिलायंस बिग टीवी आरबीटीवी ने एलजी इलेक्ट्रॉनिक्स के साथ उनकी रंगीन टीवी श्रंखला के लिए कॉरपोरेट गठबंधन किया है. एलजी के रंगीन टीवी सेट की ख़रीद पर ग्राहक सिल्वर पैक के साथ रिलायंस बिग टीवी कनेक्शन हासिल कर सकेंगे और इसके लिए उन्हें केवल 399 रुपये का इंस्टॉलेशन चार्ज देना होगा. यह एक्सक्लूसिव ऑफर कर्नाटक, राजस्थान, पंजाब, बिहार, जम्मू-कश्मीर, तमिलनाडु, गुजरात, उत्तर प्रदेश, उत्तराखंड, हिमाचल प्रदेश, छत्तीसगढ़ एवं हरियाणा में उपलब्ध है. रिलायंस बिग टीवी के सीनियर वाइस प्रेसिडेंट उमेश राव ने बताया कि कंपनी का मानना है कि इस गठबंधन से वह अपनी पहुंच का विस्तार करने में सक्षम होगी और यह गठजोड़ एलजी के ग्राहकों के लिए भी फ़ायदेमंद होगा. कंपनी भविष्य में विभिन्न श्रेणियों के उत्पादों के साथ गठबंधन की प्रक्रिया जारी रखेगी, जिससे अधिक से अधिक ग्राहकों तक रिलायंस बिग टीवी पहुंचाने में मदद मिल सके. रिलायंस बिग टीवी डीटीएच एमपीईजी-4 प्लेटफार्म के इस्तेमाल से भारत की पहली पूर्ण डिजिटल होम इंटरटेनमेंट सेवा ऑफर करता है. साथ ही 230 टीवी, सिनेमा एवं ऑडियो चैनल की पेशकश करता है. अंग्रेजी, हिंदी एवं क्षेत्रीय भाषाओं में 32 एक्सक्लूसिव मूवी चैनलों के साथ रिलायंस बिग टीवी डीटीएच प्रति वर्ष 600 नई फ़िल्मों के विकल्प की पेशकश करता है, जो देश के किसी भी डीटीएच अथवा केबल द्वारा प्रदत्त सेवाओं की तुलना में अद्वितीय है. अब आप एलजी इलेक्ट्रॉनिक्स की रंगीन टीवी सीरीज़ का रोमांचकारी अनुभव पाने के लिए तैयार हो जाइए.

विज्ञापन हेतु संपर्क करें : email : advt@chauthiduniya.com

ज़रूरत इस बात की है कि शरद पवार अपने पद से इस्तीफ़ा दें और केंद्र सरकार आईपीएल के भ्रष्टाचार और इसमें पवार की भूमिका की उच्चस्तरीय जांच की व्यवस्था करे.

आईपीएल के खेल में पवार का बाउंसर

शशांक मनोहर

ललित मोदी

चिरायु अमीन

बेटी सुप्रिया सुले के साथ शरद पवार

फोटो-प्रभात पाण्डेय

चौथी दुनिया का एक और दावा सच साबित हुआ. दो महीने पहले हमने लिखा था कि आईपीएल क्रिकेट का वह काला चेहरा है, जिसमें खिलाड़ी से लेकर अधिकारी और नेता से लेकर अभिनेता तक शामिल हैं. रॉयल चैलेंजर्स बेंगलोर एवं पुणे टीमों की फ्रेंचाइजियों में शरद पवार और उनके परिवार वालों की भागीदारी हमारे दावे को सच साबित करती है, लेकिन खेल अभी ख़त्म नहीं हुआ. अभी तो बाक़ी टीमों के मालिकों का पूरा ब्यौरा आना बाक़ी है. यह भी पता नहीं कि शाहरुख़ ख़ान की कोलकाता नाइट राइडर्स सहित बाक़ी टीमों में किन-किन लोगों के पैसे लगे हैं. और फिर, मैच फिक्सिंग के किस्से की तो अभी शुरुआत भी नहीं हुई है.

आदित्य पूजन

आख़िर खुल गई पवार की पोल. लंबे समय तक इंकार करते रहने के बाद आख़िरकार उन्हें यह मानना ही पड़ा कि आईपीएल टीमों की ख़रीद-बिक्री में वह न केवल शामिल रहे हैं, बल्कि रॉयल चैलेंजर्स टीम में उनके शेयर भी हैं. चौथी दुनिया ने आईपीएल के तीसरे सीज़न के दौरान ही यह ख़ुलासा किया था कि लीग की आर्थिक गतिविधियों में तमाम तरह की अनियमितताएं बरती गई हैं. टीमों की फ्रेंचाइजी कंसोर्टियम में क्रिकेट के कर्ताधर्ताओं से लेकर अभिनेता, राजनेता और अंडरवर्ल्ड के लोग तक शामिल हैं. इसके अलावा हमने यह भी दावा किया था कि आईपीएल क्रिकेट नहीं, केवल पैसे का खेल है और यह खेल जितना पर्दे के आगे हमारी नज़रों के सामने खेला जाता है, उससे कहीं ज़्यादा पर्दे के पीछे खेला जाता है. सच्चाई तो यह है कि आईपीएल सट्टेबाज़ी और मैच फिक्सिंग का सबसे बड़ा गढ़ है और इसके सूत्रधार शरद पवार हैं.

आईपीएल के चौथे संस्करण के लिए दो नई टीमों की नीलामी से शुरू हुआ विवाद केंद्रीय मंत्रिमंडल के एक सदस्य की पहले ही बलि ले चुका है. कोच्चि टीम फ्रेंचाइजी में अपनी भूमिका को लेकर विदेश राज्यमंत्री रहे शशि थरूर को इस्तीफ़ा देना पड़ा था. इसी विवाद ने आईपीएल से जुड़े गड़े मुर्दों को उखाड़ना शुरू किया तो लीग के तत्कालीन सर्वेसर्वा एवं कमिश्नर ललित मोदी को निलंबित होना पड़ा. इस सबके बीच पवार पर भी बार-बार उंगलियां उठीं, लेकिन वह हर बार इन आरोपों से इंकार करते रहे. जबकि सच्चाई यही है कि आईपीएल के साथ केवल शरद पवार के ही आर्थिक हित नहीं जुड़े हैं, बल्कि उनके परिवार के सदस्य, जिनमें उनकी पत्नी प्रतिभा पवार, सांसद पुत्री सुप्रिया सुले और दामाद शामिल हैं, भी बराबर के साझीदार हैं. हालांकि पवार और सुप्रिया सुले अभी भी अपनी संलिप्तता से इंकार करने की कोशिश कर रहे हैं, लेकिन उपलब्ध साक्ष्यों पर नज़र डालें तो उनके बचने की कोई गुंजाइश नहीं दिखती. ताज़ा विवाद की शुरुआत पुणे टीम को लेकर सिटी कॉरपोरेशन की असफल बिडिंग से हुई. पुणे टीम को ख़रीदने के लिए सिटी कॉरपोरेशन ने 1176 करोड़ रुपये का टेंडर पेश किया था. हालांकि नीलामी की दौड़ में यह कंपनी सहारा इंडिया से पिछड़ गई, जिसने 1703 करोड़ रुपये के निवेश के साथ कोच्चि की टीम ख़रीद ली. सिटी कॉरपोरेशन के दस्तावेज़ों के मुताबिक़ , कंपनी में शरद पवार, प्रतिभा पवार एवं सुप्रिया सुले के सोलह प्रतिशत से ज़्यादा शेयर हैं. मामला प्रकाश में आते ही पवार ने पहले तो अपनी भूमिका से साफ इंकार कर दिया. उन्होंने यह दावा किया कि नीलामी की प्रक्रिया में सिटी कॉरपोरेशन के मैनेजिंग डायरेक्टर अनिरुद्ध देशपांडे व्यक्तिगत हैसियत से शामिल हुए थे. उन्होंने कंपनी बोर्ड की 17 मार्च को हुई मीटिंग के फ़ैसले का हवाला दिया, लेकिन वह इससे पहले 31 जनवरी को हुई बोर्ड की मीटिंग के बारे में बताना भूल गए, जिसमें एक फ़ैसले के द्वारा देशपांडे को कंपनी की ओर से नीलामी की प्रक्रिया में शामिल होने के लिए अधिकृत किया गया था. यह स्पष्ट है कि 17 मार्च को आयोजित की गई कंपनी बोर्ड की मीटिंग और कुछ नहीं, बल्कि मामले की लीपापोती का एक प्रयास था, जिसका उद्देश्य भविष्य में होने वाली किसी समस्या से बचना था. भारतीय जनता पार्टी के वरिष्ठ नेता एवं देश के प्रमुख वकील रविशंकर प्रसाद ने इसे फर्जीवाड़ा क़रार देते हुए यह भी कहा कि कारपोरेट जगत में ऐसे फ़र्ज़ीवाड़े काफी आम हैं. और तो और, पवार के विश्वस्त सहयोगियों में शुमार किए जाने वाले बीसीसीआई के मौजूदा अध्यक्ष शशांक मनोहर ने भी उनके दावे को ख़ारिज़ कर दिया. अभी इस पर बहस चल ही रही थी कि रॉयल चैलेंजर्स को लेकर एक नया मुद्दा सामने आ गया. दस्तावेज़ों के मुताबिक़, पवार और उनके परिवारवाले रॉयल चैलेंजर्स टीम की फ्रेंचाइजी में भी शामिल हैं. 2008 में आईपीएल टीमों की पहली नीलामी के दौरान रॉयल चैलेंजर्स को विजय माल्या के स्वामित्व वाली यूनाइटेड स्पिरिट्स लिमिटेड (यूएसएल) ने ख़रीदा था और यूएसएल के 51,000 शेयर पवार और उनके परिवारवालों के नाम पर हैं. यूएसएल ने 2006 में बारामती ग्रेप्स लिमिटेड का अधिग्रहण कर लिया था. अधिग्रहण के समय इस कंपनी के अधिसंख्य शेयर पवार परिवार के हाथों में थे और पवार के भाई इसके डायरेक्टर थे. वर्तमान समय में उक्त शेयर लैप फाइनेंस एंड कंसल्टेंसी लिमिटेड के नाम पर दर्ज़ हैं, जो पवार परिवार की ही कंपनी है. यह खुलासा ख़ुद शरद पवार ने एक टीवी चैनल पर इंटरव्यू के दौरान किया. यह पूछे जाने पर कि यह बात उन्होंने पहले क्यों नहीं बताई तो बड़े ठसक के साथ शरद पवार ने सपाट जवाब दिया कि ऐसा करने की ज़रूरत उन्हें कभी महसूस नहीं हुई.

सवाल यह है कि उन्हें यह ज़रूरत महसूस क्यों नहीं हुई. 2008 में पवार भारतीय क्रिकेट कंट्रोल बोर्ड (बीसीसीआई) के अध्यक्ष थे. बीसीसीआई द्वारा ही शुरू किए गए आईपीएल के साथ किसी तरह का वित्तीय गठजोड़ हितों के टकराव का सीधा मामला बनता है. लंबे समय से राजनीति में सक्रिय पवार कई बार महाराष्ट्र के मुख्यमंत्री और केंद्र सरकार में मंत्री रह चुके हैं. अभी भी वह केंद्रीय कैबिनेट में कृषि एवं खाद्य मंत्री हैं. उनके लंबे राजनीतिक और प्रशासनिक अनुभव को देखते हुए ऐसा नहीं लगता कि हितों के टकराव के इस मामले से वह अंजान रहे होंगे. इसका स्पष्ट मतलब है कि पवार ने यह सब जानबूझ कर किया और अब इससे अपना पल्ला झाड़ने की कोशिश कर रहे हैं. बीसीसीआई अध्यक्ष होने के नाते नीलामी प्रक्रिया को प्रभावित करने की ताक़त भी उनके पास थी. कोई आश्चर्य नहीं कि यूएसएल को रॉयल चैलेंजर्स टीम की फ्रेंचाइजी दिलाने में उन्होंने अपने पद का इस्तेमाल किया हो. वैसे भी उस समय ललित मोदी आईपीएल के चेयरमैन थे, जो उनके विश्वासपात्रों में हैं और अभी भी अपने ट्विटर संदेशों के माध्यम से पवार को बचाने की हरसंभव कोशिश कर रहे हैं. इन खुलासों के बाद भी मोदी ने ट्विटर पर लिखा कि पवार का लीग की वित्तीय गतिविधियों से कोई लेना-देना नहीं. अपने तानाशाही रवैये और भ्रष्टाचार के चलते तमाम तरह की मुश्किलें झेल रहे मोदी के मालिक प्रेम को समझा जा सकता है. उन्हें मदद की ज़रूरत है और इसमें पवार उनके लिए कारगर हो सकते हैं, लेकिन ख़ुद पवार का बचना मुश्किल नज़र आ रहा है. तर्क यह है कि कोच्चि टीम की फ्रेंचाइजी ने शशि थरूर की महिला मित्र सुनंदा पुष्कर को स्वीट इक्विटी दी थी और इसी मुद्दे पर थरूर को मंत्रिपद से हाथ धोना पड़ा था. यहां तो ख़ुद पवार एवं उनके परिवारवालों की सीधी और स्पष्ट संलिप्तता है. इससे पहले भी जब ललित मोदी की कारगुजारियों की पोल खुली थी, तब भी पवार की सांसद पुत्री सुप्रिया सुले का नाम उछला था. आईपीएल के ब्रॉडकास्टिंग राइट्स हासिल करने वाली मल्टीस्क्रीन मीडिया में सुले के पति के दस प्रतिशत शेयर होने की ख़बर आई. सुले ने पहले तो इसे सिरे से नकार दिया, लेकिन साक्ष्यों की मौजूदगी में उन्हें बाद में इसे स्वीकार करना पड़ा था.

सच्चाई यह भी है कि पवार का ड्रामा यहीं तक सीमित नहीं है. चौथी दुनिया ने दो महीने पहले ही यह खुलासा किया था कि आईपीएल भ्रष्टाचार का गढ़ है. इसके मुक़ाबले मैदान पर तो केवल दिखावे के लिए ही खेले जाते हैं, वास्तविकता यह है कि सारे मुक़ाबले पहले से ही फिक्स होते हैं. कौन सी टीम जीतेगी, कौन-कौन सी टीम सेमी फाइनल और फाइनल में पहुंचेगी और कौन सा खिलाड़ी कैसा प्रदर्शन करेगा, सारी बातें पहले से ही तय होती हैं. सट्टेबाज़ों से बातचीत के आधार पर तैयार अपनी रिपोर्ट में हमने यह बताया था कि मैच फिक्सिंग के इस खेल में अंडरवर्ल्ड के साथ-साथ राजनेता, अभिनेता, क्रिकेट अधिकारी और टीमों के मालिक तक शामिल हैं. साथ ही हमने यह भी कहा था कि आईपीएल की लेट नाइट पार्टियों में शराब और शबाब का खेल भी जमकर खेला जाता है, ताकि खिलाड़ियों को फांसा जा सके. हमारे दावे की पुष्टि एडम गिलक्रिस्ट के उस हालिया बयान से भी होती है, जिसमें उन्होंने लीग में मैच फिक्सिंग होने की आशंका जताई है. डेक्कन चार्जर्स टीम के कप्तान गिलक्रिस्ट ने कहा है कि उनके पास सबूत नहीं हैं, लेकिन उन्हें लगता है कि आईपीएल के दौरान मुक़ाबलों को फिक्स किया जाता है. अब जबकि यह बात साबित हो चुकी है कि पवार आईपीएल की टीम के मालिकों में शामिल हैं तो चौथी दुनिया के इस दावे की सच्चाई से भी इंकार नहीं किया जा सकता कि मैच फिक्सिंग के इस खेल में पवार भी शामिल हैं.

नैतिकता का तकाजा यही है कि पवार इस्तीफ़ा दे दें, ताकि पूरे मामले की निष्पक्ष जांच-पड़ताल संभव हो सके. लेकिन अपने पूरे राजनीतिक करियर में एक भी चुनावी मुक़ाबला न हारने वाले पवार ऐसा नहीं करेंगे. वैसे भी भ्रष्टाचार में डूबे हमारे देश के राजनीतिज्ञों से नैतिकतापूर्ण व्यवहार की अपेक्षा करना भी बेमानी है. इस सबके बीच केंद्र सरकार की चुप्पी भी हैरान करती है. इतना बड़ा घोटाला हो गया, लेकिन सरकार इसे पवार का व्यक्तिगत मामला बताकर कन्नी काट रही है. राजनीतिक झंझावातों के बीच कांग्रेस अपने एक सहयोगी दल को नाराज़ नहीं करना चाहती, लेकिन केंद्र सरकार और पवार को यह समझना होगा कि जनता ज़्यादा दिनों तक चुप नहीं रहने वाली. वह क्रिकेट को अपना धर्म मानती है और खिलाड़ियों को अपना भगवान. अपने प्रिय खेल के साथ इस तरह का खेल वह बर्दाश्त नहीं कर सकती. आज ज़रूरत इस बात की है कि शरद पवार अपने पद से इस्तीफ़ा दें और केंद्र सरकार आईपीएल के भ्रष्टाचार और इसमें पवार की भूमिका की उच्चस्तरीय जांच की व्यवस्था करे. साथ ही बाक़ी सभी टीमों में किन-किन लोगों का पैसा लगा है और इस पैसे का स्रोत क्या है, इसकी भी जांच होनी चाहिए. यदि ऐसा नहीं हुआ और जनता ने मामले को अपने हाथों में ले लिया तो पवार के साथ-साथ सरकार के लिए भी बने रहना मुश्किल हो सकता है.

aditya@chauthiduniya.com

फ्रेंच ओपन

क्ले कोर्ट किंग को पांचवीं बार ख़िताब

फ्रांसेस्का शियावोने

राफेल नडाल

वर्ष 2010 की फ्रेंच ओपन चैंपियनशिप उतार-चढ़ावों के लिए याद की जाएगी. महिलाओं के वर्ग में जस्टिन हेनिन और विलियम्स बहनों, सेरेना एवं वीनस के अलावा जेलेना जेनकोविच की चुनौती को समाप्त करते हुए 17वीं वरीयता प्राप्त फ्रांसेस्का शियावोने खिताब जीत कर इटली की पहली ग्रैंड स्लैम चैंपियन बन गईं. पुरुषों के वर्ग में भी कई उतार-चढ़ाव हुए. शीर्ष वरीयता प्राप्त स्विट्जरलैंड के रोजर फेडरर क्वार्टर फाइनल में ही रॉबिन सोल्डरलिंग से हार कर बाहर हो गए, लेकिन क्ले कोर्ट के किंग कहे जाने वाले स्पेन के राफेल नडाल ने रोनाल्ड गैरां पर अपनी बादशाहत बरक़रार रखी. फाइनल में उन्होंने सोल्डरलिंग को हरा कर पांचवीं बार फ्रेंच ओपन का खिताब जीतते हुए एटीपी रैंकिंग में शीर्ष वरीयता भी हासिल कर ली. इस जीत से उन्होंने पिछले साल इसी टूर्नामेंट में सोल्डरलिंग से मिली हार का बदला भी ले लिया. नडाल इससे पहले 2005 से 2008 तक लगातार चार बार फ्रेंच ओपन चैंपियन रह चुके हैं. इस वर्ष उन्होंने पूरे टूर्नामेंट में एक भी सेट नहीं गंवाया, जबकि फ्रेंच ओपन के कुल 39 मुक़ाबलों में एक बार ही हार का सामना करना पड़ा. नडाल अब ब्यान बोर्ग के छह फ्रेंच ओपन खिताबों से भी केवल एक क़दम ही दूर रह गए हैं.

इस साल के फ्रेंच ओपन परिणाम भारत के लिए अच्छे नहीं रहे. देश के शीर्ष वरीयता प्राप्त टेनिस खिलाड़ी सोमदेव देवबर्मन 13 साल बाद टूर्नामेंट के मुख्य ड्रॉ में प्रवेश पाने वाले पहले भारतीय खिलाड़ी बने, लेकिन उन्हें पहले ही दौर में पराजय का सामना करना पड़ा. इसके बाद सारी उम्मीदें डबल्स और मिक्स्ड डबल्स मुक़ाबलों पर टिकी थीं, जिनमें महेश भूपति और लिएंडर पेस भारतीय चुनौती की अगुवाई कर रहे थे. डबल्स में पेस के जोड़ीदार ल्यूकास डलोही थे, जबकि भूपति मैक्स मिर्नी के साथ उतरे थे. भूपति-मिर्नी की जोड़ी दूसरे राउंड में ही हार कर बाहर हो गई, जबकि पेस-डलोही को फाइनल में डेनियल नेस्टर-नेनाद जिमनोजिक के हाथों हारने के बाद उपविजेता बनकर संतोष करना पड़ा. मिक्स्ड डबल्स मुक़ाबलों में पेस एवं भूपति को और ज़्यादा निराशा का सामना करना पड़ा. लिजेल ह्यूबर के साथ मैदान पर उतरे भूपति पहले राउंड में ही बाहर हो गए, जबकि पेस एवं कारा ब्लैक की जोड़ी को क्वार्टर फाइनल में हार स्वीकार करनी पड़ी.

चौथी दुनिया ब्यूरो
feedback@chauthiduniya.com

Postal Regn. No. DL/ND-11/6139/2009-11, RNI No. 45843/86

अब आईपीएल तो ख़त्म हो गया, सो प्रीति क्या करतीं. ऐसे में ख़ुद को व्यस्त रखने के लिए उन्होंने एक नया तरीक़ा निकाला है.

सेंसर, फिल्में और राजनीति

राजेश एस कुमार

हमारे देश में जब भी किसी समिति या बोर्ड का गठन किया जाता है, वह जल्द ही अपने लक्ष्य से भटक कर कुछ प्रभावशाली लोगों के हाथों की कठपुतली मात्र बनकर रह जाता है. भारत सरकार द्वारा गठित सेंसर बोर्ड भी आजकल इसी राह पर चल रहा है. यह बोर्ड अपने अधिकारों का प्रयोग निज़ी हितों को ध्यान में रखकर कर रहा है. यही वजह है कि पिछले कुछ समय से बोर्ड के फैसलों और पक्षपातपूर्ण रवैये को लेकर सवाल उठते रहे हैं. दरअसल सेंसर को इस्तेमाल करने का गुर कपूर, भट्ट और चोपड़ा जैसे लोग ही जानते हैं. छोटे निर्माताओं की फ़िल्मों के लिए सारे क़ानूनों और सांस्कृतिक मूल्यों का पुलिंदा आड़े आ जाता है. जबकि बड़े निर्माताओं की फ़िल्मों में कला की दृष्टि या कहानी की मांग का बहाना बनाकर कुछ भी दिखा दिया जाता है. यही वजह है कि परेशान फ़िल्म निर्माता सेंसर बोर्ड की प्रमाणिकता पर सवाल उठाने लगे हैं.

आख़िर सेंसर बोर्ड का उद्देश्य क्या है? इसके नियम-क़ानून सभी पर समान रूप से लागू क्यों नहीं होते हैं? इन्हीं सवालों पर जब चौथी दुनिया ने कुछ निर्माता-निर्देशकों से बात की तो यह सच सामने आया कि सेंसर बोर्ड के ज्यूरी मेंबर अपने ओहदे का प्रयोग कुछ ख़ास लोगों के फ़ायदे के लिए करते हैं. इन ख़ास लोगों में उनके क़रीबी निर्माता-निर्देशक, राजनीतिक हस्तियां और व्यवसायिक एवं पारिवारिक रिश्तेदार शामिल हैं. सेंसर के दोहरे रवैये के शिकार निर्देशक संजय गढ़वी के मुताबिक़, उनकी फ़िल्म *तेरे लिए* में एक डायलॉग में *शिट* शब्द पर आपत्ति जताते हुए सेंसर ने पूरा सीन ही उड़ा दिया था, जबकि *गंगाजल* और *इश्क़िया* में खुलेआम दी गई गालियां सेंसर को सुनाई नहीं दीं. ऐसा ही अनुभव *ब्लैक फ्राइडे* और *देव डी* बना चुके अनुराग कश्यप को हुआ, जिनकी लगभग सभी फ़िल्मों पर सेंसर ने टांग अड़ाई. चाहे वह *ब्लैक फ्राइडे, गुलाल, नो स्मोकिंग* हो या *पांच*. इसमें पांच अभी भी डब्बे में बंद है. बोर्ड जिस तरह से फ़िल्मों को संपादित करता (कतरता) है, वह उसके दोहरे मापदंड वाली मानसिकता का परिचायक है. यहां कुछ उदाहरणों का ज़िक्र ज़रूरी है.

शर्मिला टैगोर   अनुराग कश्यप

राजकपूर की फ़िल्म *राम तेरी गंगा मैली* में मंदाकिनी द्वारा झरने में पारदर्शी साड़ी में वक्ष प्रदर्शन एवं क्लोजअप में स्तनपान और देव आनंद की फ़िल्म *हम नौजवान* में एक अवयस्क लड़की (तब्बू) के अंत:वस्त्र को खलनायक द्वारा खींचने के दृश्य सहज रूप से दिखा दिए गए, तो वहीं बी आर चोपड़ा की फ़िल्म *इंसाफ़ का तराज़ू* में अश्लील दृश्यों की भरमार होने के बावज़ूद मात्र हल्की-फुल्की काट-छांट की गई. इससे साफ़ है कि इन फ़िल्म निर्माताओं का कितना रसूख़ है और नए-नवेले निर्देशकों की फ़िल्मों में एक छोटा सा किस सीन भी सेंसर बोर्ड को खटकने लगता है. हम यह नहीं कहते कि सेंसर बोर्ड हिंसा और अश्लीलता को यू हीं पास कर दे. हमारा तो सिर्फ़ यही कहना है कि बोर्ड सबके साथ समान रूप से पेश आए. यह तो थी रसूख़दार निर्माताओं की सेंसर में दख़ल की बात. अब हम आपको बताते हैं कि किस तरह से राजनीतिक लोग अपने फ़ायदे और नुक़सान के आधार पर फ़िल्में सेंसर कराते हैं. 1975 के आपातकाल के दौरान प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी के ख़ास लोगों ने गुलज़ार की फ़िल्म *आंधी* पर इसलिए प्रतिबंध लगवा दिया था कि वह इंदिरा गांधी के जीवन से मेल खाती थी. दीपा मेहता की *फ़ायर* और मीरा नायर की *कामसूत्र* विदेशों में रिलीज हुईं, लेकिन भारत में नहीं हो पाईं. न्यायालय का दरवाज़ा खटखटाने के बाद इन फ़िल्मों को प्रदर्शन की मंज़ूरी मिली. फूलन देवी के जीवन पर आधारित शेखर कपूर की फ़िल्म *बैंडिट क्वीन* का मामला कई महीनों तक न्यायालय में चलता रहा और अंत में सुप्रीम कोर्ट ने फ़िल्म के प्रदर्शन को मंज़ूरी दी.1973 में बनी फ़िल्म *गरम हवा* एक ऐसे मुस्लिम परिवार की कहानी थी, जो बंटवारे के बाद पाकिस्तान नहीं जाना चाहता था. बलराज साहनी द्वारा अभिनीत इस फ़िल्म को सेंसर बोर्ड ने प्रतिबंधित कर दिया. जबकि इसी पृष्ठभूमि पर कई फ़िल्में वह बड़ी आसानी से पास कर चुका है. इसी तरह सोनिया गांधी के जीवन पर आधारित निर्माता-निर्देशक दिनेश ठाकुर की फ़िल्म को सेंसर बोर्ड ऑफ इंडिया सर्टिफिकेशन ने सेंसर करने से मना करते हुए सोनिया गांधी के एनओसी लेटर की मांग कर दी थी. इस पर ठाकुर अदालत जा पहुंचे और क़ानूनी लड़ाई में उन्हें जीत हासिल हुई. सवाल तो यह है कि ठाकुर जैसे कितने लोग हैं, जो क़ानूनी पचड़ों में पड़ने से नहीं कतराते.

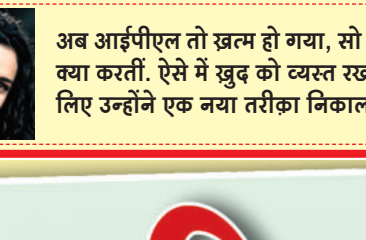

यहां सवाल यह भी है कि क्या सेंसर बोर्ड का काम सोनिया गांधी करेंगी या फिर बोर्ड के सदस्य इस क़ाबिल नहीं हैं कि वे फ़िल्म को सेंसर कर सकें. क्या सोनिया गांधी का अनापत्ति पत्र ही सर्टिफिकेट है. होना तो यह चाहिए था कि बोर्ड पहले फ़िल्म को सेंसर करता और फिर उस पर सोनिया गांधी के एनओसी की मांग करता. सेंसर के ऐसे पक्षपाती रवैयों की लिस्ट काफ़ी लंबी है. बोर्ड की क़ाबिलियत का अंदाज़ा सीबीएफसी मुंबई के भूतपूर्व रीजनल हेड विनायक आज़ाद के बयान से पता चलता है. आज़ाद कहते हैं कि हम फ़िल्म समीक्षक नहीं हैं, इसलिए फ़िल्म में क्या दिखाया जाए, क्या न दिखाया जाए, यह तय करना हमारा काम नहीं है. तो फिर सेंसर क्या तय करेगा? क्या वह सिर्फ़ सरकारी ख़र्चे पर पलने वाला एक चालू विभाग बना रहेगा और यहां भी राजनीति का खेल चलता रहेगा? बग़ैर समीक्षा किए फ़िल्मों पर प्रतिबंध लगता रहेगा और रसूख़दारों की फ़िल्मों को साफ़-सुथरी फ़िल्म होने का सर्टिफिकेट दिया जाता रहेगा? अभी तो सिर्फ़ ठाकुर और राखी (एलबम में कमीनी शब्द के लिए क़ानूनी लड़ाई) जैसे लोग ही अदालत में चुनौती दे रहे हैं, लेकिन अगर ऐसा ही चलता रहा तो वह दिन भी दूर नहीं, जब सेंसर बोर्ड के इस रवैये की मार झेल रहा हर निर्देशक उसे अदालत में घेरेगा और फ़ज़ीहत करेगा. अभी भी वक़्त है कि सरकार जागे और बोर्ड में ऐसे लोगों की नियुक्ति करे, जिनकी कैंची सिर्फ़ फिल्म देखे, न कि निर्माता-निर्देशक का बड़ा नाम और हैसियत.

rajeshy@chauthiduniya.com

किसी से न कहना

इंडस्ट्री की टॉम ब्वॉय के नाम से मशहूर डिंपल गर्ल प्रीति जिंटा पिछले कुछ समय से फ़िल्मों से ज़्यादा आईपीएल में व्यस्त रहीं. अब आईपीएल तो ख़त्म हो गया, सो प्रीति क्या करतीं. ऐसे में ख़ुद को व्यस्त रखने के लिए उन्होंने एक नया तरीक़ा निकाला है. अब वह भी ट्विटर में उतर आई हैं. इसी के जरिए वह अपना खाली वक्त गुज़ार रही हैं. ख़ुद की पोस्ट के अलावा वह अपने दोस्तों और को-स्टार्स के पेज पर भी पोस्ट छोड़ती रहती हैं. हाल में उन्होंने डुग्गू यानी रितिक के पेज पर एक पोस्ट छोड़ा है. इस पोस्ट में उन्होंने फ़िल्म काइट्स में उनकी परफॉर्मेंस की जमकर तारीफ़ की. प्रीति कहती हैं कि काइट्स में डुग्गू गॉड लगते हैं. उनके लुक और बोल्ड दृश्यों की भी उन्होंने सराहना की. हालांकि फ़िल्म काइट्स बॉक्स ऑफिस पर बुरी तरह फ्लॉप रही. लेकिन इससे प्रीति को कोई फ़र्क नहीं पड़ता. आखिर दोनों दोस्त जो ठहरे. दोनों साथ में कोई मिल गया जैसी हिट फ़िल्म भी कर चुके हैं. इसलिए ऐसे वक्त में इतनी तारीफ़ तो बनती है. रितिक ने प्रीति को जवाब भी बड़े दिलचस्प अंदाज़ में दिया. उन्होंने लिखा, *हे प्री करेजियस ऑफ यू कॉम्लीमेंटिंग मी फॉर काइट्स, बट डोंट से इट टू लाउड. समबडी माइट हियर यू.* रितिक ने ऐसा क्यों लिखा, इसका तो पता नहीं, पर इतना ज़रूर है कि दोनों पुराने दोस्त एक दूसरे का वक्त बख़ूबी काट रहे हैं. ग़ौरतलब है कि दोनों ही इस समय खाली हैं.

फ़िल्म प्रिव्यू

पाकिस्तान के एक महत्वाकांक्षी पत्रकार के जीवन की कहानी है फ़िल्म तेरे बिन लादेन. नाम से पता चलता है कि इसमें ओसामा बिन लादेन का जिक्र है, लेकिन इसका ट्रीटमेंट गंभीर नहीं, बल्कि हास्यास्पद है. पत्रकार अली जाफर के किरदार में प्रसिद्ध पाकिस्तानी कलाकार अली हैं, जो अमेरिका जाकर काम करने के इच्छुक हैं. कई बार कोशिश करने के बाद भी ऐसा मौक़ा उनके हाथ नहीं लग पाता है, क्योंकि हर बार उनका वीजा निरस्त कर दिया जाता है. अपने काम के सिलसिले में घूमते हुए वह एक व्यक्ति से टकराते हैं, जो लादेन जैसा दिखता है. इस व्यक्ति को देखकर पत्रकार अली को एक आइडिया आता है कि वह इसके ज़रिये पैसा और नाम दोनों कमा सकते हैं. वह नकली ओसामा का वीडियो बनाकर न्यूज चैनलों को बेचने की सोचते हैं, लेकिन उनकी यह योजना क़ामयाब नहीं हो पाती. उनके इस काम से अमेरिका में भी हलचल मच जाती है. व्हाइट हाउस से एक कट्टर सीक्रेट एजेंट को अली के क्रियाकलापों पर नज़र रखने के लिए भेजा जाता है. अभिषेक शर्मा द्वारा निर्देशित इस फ़िल्म की निर्माता हैं आरती शेट्टी एवं पूजा शेट्टी देउरा. इसकी शूटिंग मुंबई और हैदराबाद में की गई, इसलिए कि यहां की कुछ जगहें पाकिस्तान के कराची शहर की कुछ जगहों से मिलती-जुलती हैं. शूटिंग लोकेशन पर पाकिस्तानी होर्डिंग्स, पोस्टर एवं रेडियो सेट आदि लगाए गए थे. साथ ही सेट के आसपास के लोगों के कॉस्ट्यूम और चीजों का भी खास ख्याल रखा गया. फ़िल्म के लिए इस्तेमाल होने वाला ट्रक भी इस तरह सजाया गया था, जिससे लगे कि वह पाकिस्तान का ट्रक है. पाकिस्तान में ड्राइवर अपने ट्रक को दुल्हन की तरह सजाते हैं, लेकिन वैसा ट्रक भारत में खोजना मुश्किल था. संयोग से फ़िल्म के निर्देशक अभिषेक एवं सिनेमेटोग्राफर संतोष को हैदराबाद के एक चौराहे पर वैसा ही सजा-धजा ट्रक नज़र आ गया. उन्होंने उसके ड्राइवर से ट्रक किराए पर देने का आग्रह किया. वह मान गया. यह फ़िल्म 16 जुलाई को रिलीज होगी.

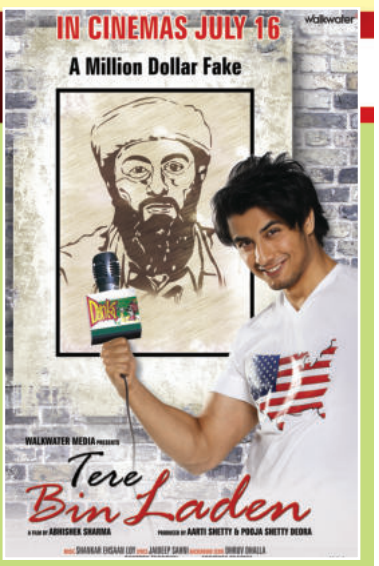

चौथी दुनिया ब्यूरो
feedback@chauthiduniya.com

मलाइका के ठुमके

बड़े पर्दे पर पूरी तरह फ्लॉप हो चुके अरबाज ख़ान ने अब पर्दे के पीछे का काम संभालने का मन बना लिया है. दरअसल वह उत्तर प्रदेश और बिहार के अपराध एवं राजनीति पर आधारित एक फ़िल्म का निर्माण करने वाले हैं. दबंग नामक इस फ़िल्म में उनकी पत्नी मलाइका अरोड़ा ख़ान एक अलग अंदाज़ में नज़र आएंगी. उनके चाहने वालों के लिए ख़ुशख़बरी यह है कि वह इस फ़िल्म में अपने ठुमकों से भी आग लगाने वाली हैं. इस फ़िल्म में वह मुन्नी बदनाम हुई... गीत के बोल पर ठुमके लगाती नज़र आएंगी और उनका साथ देंगे सोनू सूद. वैसे 1998 में मणिरत्नम की फ़िल्म दिल से में शाहरुख ख़ान के साथ उनके चल छैय्यां छैय्यां...वाले ठुमके को भी कोई नहीं भूल पाया होगा. शाहरुख के साथ लगाए गए ठुमकों ने वह पहचान दिलाई कि इस ग्लैम डॉल को लोग छैय्यां छैय्यां गर्ल कहकर पुकारने लगे. अपने पति की फ़िल्म में भी वह ऐसा ही जबर्दस्त आइटम डांस करने वाली हैं. उनके डांस को कोरियोग्राफ किया है फराह ख़ान ने. मलाइका इस फ़िल्म को लेकर काफ़ी उत्साहित हैं. मॉडल एवं वीडियो जॉकी मलाइका को फ़िल्मों का भी क्रेज है. मलाइका ने प्रेम का गम, ईएमआई, किडनैप, वेलकम, ओम शांति, हे बेबी, काल, द हीरो, कांटे, मां तुझे सलाम, इंडियन, बिच्छू, दिल से एवं आजा मेरी जान जैसी फ़िल्मों में आइटम डांस किया. हालिया रिलीज फ़िल्म हाउसफुल में वह अक्षय कुमार की गर्लफ्रेंड पूजा के रोल में थी. फ़िल्मों में उनका रोल छोटा, पर काफ़ी प्रभावित करता है. लीड रोल न करने के बारे में मलाइका कहती हैं कि वह एक मॉडल हैं और किसी फ़िल्म के लीड रोल के साथ वह न्याय नहीं कर पाएंगी. इसलिए फ़िल्मों में उन्हें अपने लिए वही रोल पसंद है, जो ग्लैमरस हो. ख़ूबसूरत और आकर्षक फिगर का राज बताते हुए मलाइका कहती हैं कि उनके लिए सुंदर होने का मतलब है स्वस्थ त्वचा. वह सुबह उठकर चाय या कॉफी से पहले नींबू और शहद मिला हल्का गुनगुना पानी पीती हैं. त्वचा को नुक़सान पहुंचाने वाली चीजों जैसे शराब एवं सिगरेट को हाथ भी नहीं लगाती हैं. खाने में वह स्वाद को नहीं, स्वस्थ भोजन और नियमित एक्सरसाइज़ को प्राथमिकता देती हैं.

www.chauthiduniya.com

चौथी दुनिया

बिहार झारखंड

दिल्ली, 21 जून-27 जून 2010

बीजी उदय

अस्त होगा या उदय

सरोज सिंह

बीजी उदय का बिहार के चुनावी मैदान में उतरना एक नई सियासत की शुरुआत इसलिए भी है क्योंकि नीतीश-लालू-पासवान जैसे तीन चेहरों के इर्द-गिर्द घूमती राजनीति उनके जाने बग़ैर किसी दूसरे के प्रवेश का रास्ता खोल रही है.

पिछले पंद्रह सालों से बिहार की राजनीति तीन चेहरों के हाव-भाव से बनती व बिगड़ती रही है. उन चेहरों ने जैसा चाहा, वैसी ही राजनीति का खेल यहां खेला. कौन राज करेगा व कौन विरोध करेगा, कौन दिल्ली जाएगा या फिर कौन पटना में बैठेगा. किसे मिलेगी लालबत्ती व कौन सड़कों पर पैदल घूमेगा, पिछड़ावाद चलेगा या फिर अगड़ावाद, आमतौर पर यह सारा कुछ उन्हीं तीन चेहरों की मर्ज़ी से तय होता है और प्रदेश की जनता इसे ही नियति मानकर जिंदाबाद व मुर्दाबाद के नारों के साथ स्वीकार कर लेती है. पर सात जून को राज्यसभा के लिए नामांकन के अंतिम दिन के अंतिम पहर में बीजी उदय का चेहरा जैसे ही सामने आया, इन तीन चेहरों की रंगत ही उड़ गई. बंगलुरू के उद्योगपति उदय के चुनाव मैदान में आने से ऐसा पहली बार हुआ, जब उन तीन चेहरों की मनमर्ज़ी के ख़िलाफ़ बिहार में कोई राजनीतिक खेल हुआ. अमूमन इन्हीं तीन चेहरों की मर्ज़ी से तय होने वाली बिहार की राजनीति में पहली बार बीजी उदय ने ब्रेक लगाया है. प्रदेश की राजनीति में हुआ यह नया प्रयोग उन तीन चेहरों के तेज के सामने कितना सफ़ल होगा यह तो वक्त तय करेगा, पर इतना तो तय है कि बीजी उदय ने एक दरवाज़ा तो खोल ही दिया है. ऐसी भी चर्चा है कि बीजी उदय मायावती के उम्मीदवार हैं और बसपा के विधायक उदय का समर्थन कर सकते हैं. राजनीतिक गलियारों में ऐसी चर्चा है कि दलित नेता राम विलास पासवान का कद दुरुस्त करने के लिए मायावती ने उदय का कार्ड खेला है. उदय बंगलुरू के उद्योगपति हैं. राज्यसभा तक पहुंचने के लिए 41 वोटों की ज़रूरत है. कांग्रेस के तीन विधायक उदय के प्रस्तावक भी बन चुके हैं. हालांकि कांग्रेस आलाकमान द्वारा इस पर कड़ा रुख अपनाए जाने के बाद कांग्रेस के उक्त तीनों विधायकों ने कहा है कि वे आलाकमान के आदेश को मानेंगे. जाहिर है, इस सब से राम विलास पासवान के लिए मुश्किलें बढ़ सकती हैं. पासवान को राज्यसभा तक पहुंचने के लिए अपनी पार्टी के 12 विधायकों सहित राजद, कांग्रेस और बसपा विधायकों के समर्थन की भी दरकार है.

जहां तक नीतीश कुमार, लालू प्रसाद व रामविलास पासवान की बात है, तो इन्हीं तीन चेहरों का बिहार की राजनीति पर दबदबा है. अपनी सुविधा व ज़रूरत की मुताबिक़ ये अपने रिश्ते बनाते व बिगाड़ते हैं. इन्हीं चेहरों में से एक कभी बिहार के लिए शहीद होने की बात कहता है तो कभी दूसरा चेहरा बिहारवासियों के लिए सब कुछ कुर्बान करने की दुहाई देता है. उन्हें ही लोकसभा में जाना है और न जा पाए तो राज्यसभा में जाना है. समरस समाज के निर्माण का दावा करने वाले ये चेहरे राजनीतिक लाभ के लिए कभी पिछड़ावाद तो कभी अगड़ावाद का चोला पहनने से भी नहीं हिचकते हैं. अभी विधान परिषद व राज्यसभा के लिए उम्मीदवारी देने की बात आई तो पिछड़ावाद का रंग इन तीन चेहरों पर ऐसा चढ़ा कि वे अगड़ावाद का उच्चारण ही भूल गए. दूसरी तरफ भाजपा पर अगड़ावाद का ऐसा भूत सवार हुआ कि वह पिछड़ावाद को सपने में भी नहीं देख पाई. मतलब सबको साथ लेकर समरस समाज की कल्पना राजनीतिक एजेंडे में कहीं नहीं दिखी और चुनावी साल में केवल राजनीतिक नफ़ा नुक़सान को देखते हुए उम्मीदवारी तय कर दी गई.

बिहार विधानपरिषद की सात सीटों एवं राज्यसभा की पांच सीटों के द्विवार्षिक चुनाव में इन तीन चेहरों ने तय कर दिया कि बिहार में अब सवर्णों की नहीं, दलित एवं पिछड़ी जातियों की राजनीति चलेगी. इस चुनाव में लालू ने माय के साथ दलित कार्ड खेला तो नीतीश कुमार ने लव-कुश एवं अति पिछड़ा कार्ड खेला. नीतीश ने जदयू से नाराज़ चल रहे सवर्ण नेताओं को स्पष्ट संदेश दिया कि वह अब अगड़ी जातियों के सहारे नहीं, बल्कि लवकुश एवं अति पिछड़ा वोट बैंक के सहारे चुनावी अखाड़े में उतरेंगे.

शरद यादव, ललन सिंह एवं प्रभुनाथ सिंह की नाराज़गी को दरकिनार करते हुए नीतीश कुमार ने राज्य सभा एवं विधान परिषद चुनाव में स्पष्ट कर दिया वह कुर्मी, कोइरी (लव-कुश) के साथ पिछड़ा व महादलित की राजनीति करेंगे. उन्होंने सवर्णों के साथ मुसलमानों को भी इस चुनाव में दरकिनार कर दिया. राज्यसभा चुनाव में एजाज़ अली के स्थान पर किसी मुस्लिम को भेजने के बजाए अपनी बिरादरी से कुर्मी जाति के अधिकारी रामचंद्र प्रसाद को उम्मीदवार बनाकर नीतीश कुमार ने अपनी लाइन साफ़ कर दी. उन्होंने कुर्मी जाति से राज्यसभा में रामचंद्र प्रसाद को तो विधान परिषद में रूदल राय को उम्मीदवार बनाया. इसी प्रकार कुशवाहा जाति से उपेंद्र कुशवाहा को राज्यसभा में तो अति पिछड़ी जाति से उदयकांत चौधरी एवं कायस्थ समाज से विजय कुमार वर्मा को विधान परिषद भेजा है. राज्यसभा चुनाव में रामकृपाल यादव एवं रामविलास पासवान तथा विधान परिषद चुनाव में गुलाम गौस एवं रामचंद्र प्रसाद साह को प्रत्याशी बनाकर लालू प्रसाद ने भी बिहार विधान सभा चुनाव की अपनी रणनीति स्पष्ट कर दी. उन्होंने अपने समीकरण के साथ दलित एवं पिछड़ी जातियों के वोट बैंक के सहारे पुन: सत्ता में वापस लौटने की रणनीति तैयार की है. वैश्य समुदाय से रामचंद्र प्रसाद साह को पुन: विधान परिषद में भेजकर उन्होंने नाराज़ चल रहे वैश्य वोट बैंक को गोलबंद करने का प्रयास किया है. रामविलास पासवान चूंकि ख़ुद प्रत्याशी हैं, इसलिए इस चुनाव में उनकी मर्ज़ी ज़्यादा मायने नहीं रखती है. देखा जाए तो सब कुछ ठीक वैसे ही हो रहा था जैसा पिछले पंद्रह सालों से होता आ रहा था. विधान परिषद में उम्मीदवार खड़ा न कर पाने से किसान महापंचायत से जुड़े नेता भी पस्त नज़र आ रहे थे, पर अंदरखाने में एक खेल चल रहा था जिसमें ददन पहलवान जैसे नेता अपनी महती ज़िम्मेदारी निभा रहे थे. सब कुछ ऐसा तैयार किया जा रहा था कि कहीं कोई गड़बड़ी न रह जाए, क्योंकि पहली बार इन तीन चेहरों की मर्ज़ी के बिना बिहार में कोई राजनीतिक पत्ता हिलने वाला था. तमाम आशंकाओं के बीच संभावनाओं के दरवाज़े भी खुल रहे थे. इन तीन चेहरों के साधन व सामर्थ्य का खौफ़ नए खिलाड़ियों को डरा रहा था. पर दिल में एक बात थी कि इन तीन चेहरों को वाकओवर नहीं देना है. बस इसी बात ने रास्ता बनाना शुरू कर दिया. दिल्ली, पटना व लखनऊ में बैठकों का दौर शुरू हो गया. पहला टास्क प्रस्तावकों को जुटाकर नामांकन कराने का था, जो सात जून को पूरा कर लिया गया. हिम्मत हार चुके किशोर कुमार मुन्ना व विजेंद्र चौधरी जैसे निर्दलीय विधायक भी नामांकन के दिन अवाक रह गए. उन्हें भरोसा ही नहीं हो रहा था कि बीजी उदय राज्यसभा चुनाव के अखाड़े में उतरेंगे. पर बीजी उदय ने नामांकन कर एक नए खेल की शुरुआत कर दी. बीजी उदय ने कहा है कि वह बिहार का भला चाहते हैं. बिहार के लिए उनके दिल में क्या है क्या नहीं, यह अलग बात है पर उनके बिहार आने से इतना तो स्पष्ट हो ही गया कि इन तीन चेहरों के अलावा भी बिहार में राजनीति के कई खिलाड़ी दौड़ रहे हैं. पर साधन के आभाव में वे दौड़ में काफ़ी पीछे छूट जाते हैं. बीजी उदय ने तो इन नेताओं को केवल साधन उपलब्ध कराया है, राजनीति के मैदान में दौड़ कैसे लगानी है, इसे तो उन्हीं नेताओं को तय करना है. राजनीति के मैदान में दौड़ रहे मंजे हुए तीन चेहरों को दौड़ में पीछे छोड़ने के लिए ऐसे नेताओं को हमेशा रणनीति बनाकर सही लाइन पर दौड़ लगानी होगी. बीजी उदय ने इन तीन चेहरों को यह सोचने पर मजबूर कर दिया कि क्या आगे आने वाले समय में कोई नया चेहरा भी प्रदेश की राजनीति की दिशा व दशा तय कर सकता है. हो सकता है कि 17 जून के बाद बीजी उदय को बिहार याद न आए पर इन तीनों चेहरों को बीजी उदय बहुत याद आएंगे, क्योंकि पहली बार बिहार के राजनीतिक अखाड़े में उनकी मर्ज़ी के बिना कुछ हुआ है.

feedback@chauthiduniya.com

सात जून को राज्यसभा के लिए नामांकन के अंतिम दिन के अंतिम पहर में बीजी उदय का चेहरा जैसे ही सामने आया इन तीन चेहरों की रंगत ही उड़ गई. बंगलुरू के उद्योगपति उदय के चुनाव मैदान में आने से ऐसा पहली बार हुआ, जब इन तीन चेहरों की मनमर्ज़ी के ख़िलाफ़ बिहार में कोई राजनीतिक खेल हुआ. अमूमन उन्हीं तीन चेहरों की मर्ज़ी से तय होने वाली बिहार की राजनीति में पहली बार बीजी उदय ने ब्रेक लगाया है. प्रदेश की राजनीति में हुआ यह नया प्रयोग इन तीन चेहरों के तेज के सामने कितना सफ़ल होगा यह तो वक्त तय करेगा.

गांव में जब कभी भी नाटकों का मंचन होता है तो दूरदराज के शहरों में सरकारी सेवाओं में कार्यरत यहां के लोग अपने गांव आते हैं तथा नाटकों में भाग लेकर ख़ुद को धन्य समझते हैं.

कांग्रेस में नवधनाढ्य और संभावित प्रत्याशियों में बहुचर्चित दिलीप कुमार अपनी जीत के प्रति आश्वस्त हैं

दंगल के लिए तैयार दिग्गज

रिंकी सिंह

बिहार के राजनीतिक क्षितिज पर चुनावी बादल मंडराने लगे हैं, तो राजनीति का गढ़ रहा सिकंदरा विधानसभा क्षेत्र इसमें पीछे कैसे रह सकता है. तमाम पार्टियों के नेता आसन्न चुनावी दंगल के लिए अपनी-अपनी कमर कसने लग गए हैं, लेकिन संकट की बात यह है कि लगभग सभी पार्टियां एक दूसरे के प्रतिद्वंद्वियों से कम, आंतरिक खेमेबाज़ियों से ज़्यादा त्रस्त हैं. एक तरफ जहां कांग्रेस और जदयू के बीच शक्ति प्रदर्शन की होड़ लगी हुई है, वहीं दूसरी तरफ राजद लोजपा भी इस मामले में पीछे नहीं हैं. हर पार्टी में नए नए दावेदार पैदा हो रहे हैं. इनमें बहुत से ऐसे हैं जिनकी दलीय निष्ठा संदिग्ध है, टिकट नहीं मिलने की स्थिति में वे दल-बदल कर सकते हैं और निर्दलीय भी भाग्य आजमा सकते हैं. ऐसा नहीं कर सके तो ख़ामोशी के साथ दलीय प्रत्याशी की खटिया खड़ी करने में लग सकते हैं. फिलहाल सर्वाधिक चर्चा इस बात को लेकर है कि इस क्षेत्र से जदयू के विधायक और पूर्व समाज कल्याण मंत्री रामेश्वर पासवान को पुन: टिकट मिलेगा या नहीं. उन्हें टिकट नहीं मिला तो पार्टी किस ख़ुशनसीब को टिकट देगी? मंत्रिमंडल से हटाए जाने के बाद लोकसभा चुनाव में उनके द्वारा निभाई गई भूमिका से पार्टी के राज्यस्तरीय नेता ही नहीं, स्थानीय नेता-कार्यकर्ता भी ख़फ़ा हैं. लोग कहते हैं कि जमुई के जदयू सांसद भूदेव चौधरी के क्षेत्रीय कार्यक्रम में शायद ही कभी क्षेत्रीय जदयू विधायक रामेश्वर पासवान ने भाग लिया होगा.

ज़िले में आयोजित सरकारी कार्यक्रमों में सभा के मंच पर उनकी अनुपस्थिति से पार्टी में उनकी कमज़ोर स्थिति का पता चलता है. पार्टी में यहां से टिकट पाने के लिए बहुत से इच्छुक हैं. क्षेत्रीय लोगों के अनुसार स्वच्छ छवि और हर जाति-जमात के मतदाताओं पर विशेष प्रभाव रखने वाले पूर्व जदयू ज़िलाध्यक्ष व पूर्व विधायक स्व.नगीना चौधरी के पुत्र शिवशंकर चौधरी को पार्टी टिकट देने में प्राथमिकता दे सकती है, जिन्हें स्थानीय सांसद भूदेव चौधरी का आशीर्वाद प्राप्त बताया जाता है. लोकसभा चुनाव में उन्होंने जदयू प्रत्याशी के लिए काफ़ी मेहनत की थी. सिकंदरा विधानसभा क्षेत्र में जो सफलता मिली उसे बहुत कुछ उन्हीं के परिश्रम का फल माना जाता है. यह भी कयास लगाया जा रहा है कि पूर्व विधायक श्याम रजक या बरबीघा विधानसभा क्षेत्र के विधायक डॉ. कनौजिया जदयू के उम्मीदवार हो सकते हैं. बरबीघा विधानसभा सीट के जेनरल हो जाने से डॉ. कनौजिया यहां से चुनाव लड़ सकते हैं. जदयू से एक और नाम बिनोद चौधरी का भी चर्चा में है. उन्हें मंत्री नरेंद्र सिंह का क़रीबी बताया जाता है. क्षेत्र में चल रही चर्चा के मुताबिक़ कांग्रेस से उम्मीदवारी पाने के लिए रजनी चौधरी प्रयासरत हैं. सिकंदरा में कांग्रेस से ज़िला परिषद सदस्य शंकर पासवान, गोपाल गौतम इत्यादि भी पूरी तैयारी में हैं. रजनी चौधरी के पति राजेंद्र यादव युवा राजद के पूर्व ज़िलाध्यक्ष रह चुके हैं. पिछले माह जमुई में यादव महासभा का अयोजन हुआ, जिसमें सांसद पप्पू यादव ने शिरकत की थी. ज़िले में किसनौत और मंजरौठ यादवों की बाहुल्यता पर फोकस करके अपने जनाधार को सूबे के एक पूर्व राजद सांसद को अपनी क्षमता दिखाने के उद्देश्य से की गई थी. पूर्व सांसद मंजरौठ समाज के यादव हैं, जिनकी आबादी इस ज़िले में मुट्ठी भर मानी जाती है. उक्त महासभा में रजनी चौधरी के पति की भूमिका विशेष मायने रखती है.

जनकदेव राम

प्रयाग चौधरी

रजनी चौधरी

शंकर पासवान

शिवशंकर चौधरी

सुभाष पासवान

विधानसभा क्षेत्र सिकंदरा

वहीं दूसरी और ज़िलापरिषद सदस्य शंकर पासवान खैरा प्रखंड के आधे पंचायत क्षेत्रों के सिकंदरा विधानसभा क्षेत्र में जुड़ जाने से उत्साहित हैं, क्योंकि यादव दलित व महादलित समाज के मतदाताओं में उनकी गहरी पैठ मानी जाती है. लोजपा से टिकट की दावेदारी में दलित सेना के ज़िलाध्यक्ष सुभाष पासवान के नाम की अच्छी ख़ासी चर्चा हो रही है. लोजपा के राष्ट्रीय सचिव प्रोफेसर बदरूज़मा बेग का साफ़ शब्दों में कहना है कि पार्टी के झंडे को फहराकर मशाल की रौशनी बरकरार रखने वाले युवा नेता सुभाष पासवान ने यहां की सरज़मीं पर आमलोगों के दिलों को जीता है. जनसमस्याओं के लिए प्रयासरत सुभाष पासवान के अलावा यहां कोई थोपा गया प्रत्याशी क़बूल नहीं किया जाएगा. लोजपा की उम्मीदवारी में बिहार प्रशासनिक सेवा के सेवानिवृत्त अधिकारी जनकदेव राम भी अपनी जुगत भिड़ाने में लगे हुए हैं. इसके पूर्व वर्ष 2000 में यहां से अपने भाग्य की आजमाइश कर चुके जनकदेव राम भी क्षेत्र भ्रमण में जुटे हुए हैं. लोजपा के टिकट की दावेदारी में अलीगंज के कद्दावर लोजपा नेता बखौरी पासवान की चर्चा भी धीरे-धीरे रंग दिखाने लगी है. आर्थिक रूप से कमज़ोर इस नेता को बचपन से ही पार्टी सुप्रीमो रामविलास पासवान के समाचार पत्र में छपी ख़बर को एकत्रित करने का शौक रहा है.

राजद से पूर्व मंत्री प्रयाग चौधरी ने अपनी चुनावी तैयारी शुरू कर दी है. प्रयाग चौधरी राजद से उम्मीदवारी पाने के लिए भी प्रयासरत हैं. वह अपने कार्यक्रम में क्षेत्र में किए गए विकास कार्यों के कारण पूर्व के चुनाव में मजबूत जनाधार प्रदर्शित कर चुके हैं. यह दीग़र बात है कि पिछले विधानसभा चुनाव के दौरान लालू प्रसाद से यहां के पार्टी पदाधिकारियों व राजद के कार्यकर्ताओं ने पटना में भेंट करके पूर्व मंत्री प्रयाग चौधरी को उम्मीदवार नहीं बनाए जाने की सिफ़ारिश विरोध के रूप में की थी. उस वक्त अधिकांश कार्यकर्ता राजद में शामिल ज़िला परिषद सदस्य (खैरा) शंकर पासवान को पार्टी टिकट दिलवाने के पक्ष में गोलबंद थे, लेकिन कार्यकर्ताओं की एक भी नहीं चली और प्रयाग चौधरी को राजद ने अपना प्रत्याशी घोषित कर दिया. भले ही कार्यकर्ताओं ने अपने मन की भड़ास चुनाव मैदान में निकाल दी और उन्हें पराजित होना पड़ा था. बदले राजनीतिक परिदृश्य में अब उनकी कमी पार्टी कार्यकर्ताओं को खलने लगी है और तमाम विरोधी उनके पक्ष में जी जान से मतदाताओं के बीच में कार्य कर रहे हैं. राजद से टिकट पाने के लिए जगदीश दास भी हाथ पैर फैलाते नज़र आ रहे हैं, भले ही आम मतदाताओं और कार्यकर्ताओं में उनकी पहचान न के बराबर है. लेकिन चौक-चौराहे के झोपड़ीनुमा होटलों में ही प्रचार प्रसार जारी रखने में ये माहिर दिखते हैं. फिलहाल राजद के टिकट पर चुनाव लड़ने वाले प्रत्याशी के रूप में प्रयाग चौधरी के नाम की चर्चा प्रमुखता के साथ हो रही है.

feedback@chauthiduniya.com

सेल्युलाइड के ज़माने में रंगमंच का जलवा

मनोरंजन के क्षेत्र में नए आविष्कारों के बावज़ूद कई इलाक़े ऐसे हैं, जहां आज भी परंपरागत ग्रामीण माध्यमों की प्रासंगिकता बरकरार है. सेल्युलाइड तथा थ्रीडी फ़िल्मों के इस दौर में भी रंगमंच को कला के पुजारियों ने अभी तक जिंदा रखा हुआ है. पटना के बाढ़ अनुमंडल में पंडारक और अचुआरा, इन दो गांवों में नाटकों का मंचन किसी त्योहार से कम उल्लासजनक नहीं होता. पंडारक में तो रंगमंच का जलवा कुछ इस कदर था कि थिएटर की दुनिया के पितामह पृथ्वीराज कपूर भी यहां आने का लोभ संवरण नहीं कर पाए थे. 1956 में पंडारक आए पृथ्वीराज कपूर के साथ उनके पुत्र अभिनेता शशि कपूर और पृथ्वी आर्ट थिएटर के दर्जनों प्रमुख कलाकारों की मंडली वहां लगी थी. आज भी इस गांव में जब कभी भी नाटकों का मंचन होता है तो दिल्ली, कोलकाता, बंगलुरू, चेन्नई, हैदराबाद जैसे दूरदराज के शहरों में सरकारी सेवाओं में कार्यरत रहने वाले यहां के लोग अपने गांव आते हैं तथा नाटकों में भाग लेकर ख़ुद को धन्य समझते हैं. पंडारक में नाटकों के मंचन का इतिहास नब्बे वर्ष पुराना है. रंगमंच परंपरा की शुरुआत का श्रेय जाता है, पंडारक के स्वतंत्रता सेनानियों को. 1920 के कांग्रेस सम्मेलन में भाग लेने गए स्वतंत्रता सेनानियों ने नाटकों के मंचन की आधारशिला रखी. चौधरी रामप्रसाद शर्मा की प्रेरणा से नुनूलाल बाबू, कृष्णनदंन शर्मा, जानकी नंदन सिंह तथा दिवाकर शर्मा सरीखे स्वतंत्रता सेनानियों ने रंगमंचीय परंपरा की शुरुआत की.

स्वाधीनता आंदोलन के प्रमुख केंद्र के रूप में चर्चित पंडारक के बारे में आकाशवाणी के पूर्व निदेशक श्री चतुर्भुज ने लिखा था कि बिहार में तीन जगहों पर नाटकों के मंचन का इतिहास पुराना है. ये जगह हैं जमशेदपुर, सोनपुर और पंडारक. पंडारक में रंगमंच परंपरा की शुरुआत का उद्देश्य था आजादी की लड़ाई के लिए युवाओं को प्रेरित करना. तीस के दशक में राष्ट्रकवि बेनीपुरी, पं. छविनाथ पांडेय तथा देवव्रत शास्त्री जैसे साहित्यकारों ने भी पंडारक के हिंदी नाटक समाज के सृजनात्मक नाटकीय मंचन की भरपूर प्रशंसा की थी. यही परंपरा बाढ़ के पश्चिम में स्थित अचुआरा गांव में आज भी कायम है. यहां 1956 मे नाटकों के मंचन की शुरुआत हुई. अरुणोदय कला कुंज के पचपन वर्षो के इतिहास में लगातार नाटकों का मंचन किया जाता रहा है. संस्थापक बालमुकुंद शर्मा बताते हैं कि दाहौर निवासी रामसागर सिंह, लाला सिंह, राजेश्वर शर्मा, डा. चंद्रिका सिंह, रामपदारथ सिंह, चंद्रशेखर सिंह, रमेश सिंह, रामविलास सिंह, रामचंद्र सिंह, जनक सिंह, घीना सिंह, इजहार खां, शिवाजी शर्मा, रामबहादुर सिंह आदि ग्रामीणों ने नाटक मंचन परंपरा की शुरुआत की थी. नवीन सिंह और ललन शर्मा बताते हैं कि नाटकों के मंचन के दौरान पूरे इलाक़े से लोगों की भीड़ जुटती थी. इससे क्षेत्र में सांस्कृतिक प्रतिस्पर्द्धा की भावना भी पैदा होती थी. पीएमसीएच में चिकित्सक तथा नाट्यकर्मी डा. अरूण शर्मा और युवा रंगकर्मी श्रीनिवास हालांकि अब दर्शकों की कमी का रोना रोते हैं. वर्तमान निर्देशक तथा युवा नाट्यकर्मी हेमंत कुमार बताते हैं कि गांव में पहले धार्मिक नाटकों के मंचन किया जाता था, लेकिन कलाकारों ने सामाजिक नाटकों के मंचन की परंपरा की शुरुआत की. हेमंत हालांकि दुख प्रकट करते हुए कहते हैं कि रंगमंच की सशक्त परंपरा कायम रहने के बावजूद पूरे बाढ़ जनपद में एक भी रंगशाला का नहीं होना चिंताजनक है. सरकारी उदासीनता से व्यथित रंगकर्मियों में निराशा जरूर है, लेकिन अभी भी उनमें उम्मीद की एक किरण शेष है. रंगकर्मियों को उम्मीद है कि रंगकर्म जिंदा रहेगा, नाटक जारी रहेगा.

feedback@chauthiduniya.com

चुनौती देंगे भावी प्रत्याशी

धनंजय मिश्र

आगामी विधानसभा चुनाव के लिए ज़िले के आठों विधानसभा क्षेत्र में भावी नेताओं की चहलक़दमी शुरू है. क्षेत्र के शहरों, बाज़ारों से लेकर गांवों तक जनसंपर्क अभियान आरंभ है. इस दौरे में भावी प्रत्याशियों का कारवां ज़्यादा दिखाई दे रहा है, जो आगामी चुनाव में पुराने दिग्गज नेताओं के जीत को कठिन बनाने में ही नहीं, बल्कि कड़े मुक़ाबले की तैयारी में हैं. वे अपनी जीत के लिए अभी से जी-जान से प्रयास करने लगे हैं. सीवान विधानसभा क्षेत्र में इस बार जातीय समीकरण से नए प्रत्याशी आशान्वित दिख रहे हैं. इस बार यहां विधानसभा चुनाव में कुशासन बनाम सुशासन की लहर नहीं चलेगी. जानकारों का मानना है कि ऐसी लहर के नाम पर इस बार महज़ दो ध्रुवों में मतदाता विभाजित और गोलबंद नहीं होंगे. सांप्रदायिकता और तुष्टीकरण के मुद्दे भी इस चुनाव में गौण एवं बेमानी ही साबित होंगे. कई वर्गों में मतों के बिखराव एवं विभाजन की संभावना भी प्रबल प्रतीत होती है, जिससे ज़्यादा नुक़सान यहां राजग को ही होगा. लिहाज़ा भाजपा को अधिक नुक़सान उठाना पड़ सकता है. पिछले चुनाव में लालू-राबड़ी के जंगलराज की समूल समाप्ति ने मतदाताओं को ऐसा गोलबंद किया कि राजग के गढ़ सीवान में माय समीकरण का साम्राज्य ही ध्वस्त हो गया. दूसरी ओर यहां भाजपा के नेताओं की अति महत्वाकांक्षा एवं मनमानेपूर्ण नीतियों से जनसंघ के पुराने भाजपाई नेता और कार्यकर्ता स्वयं को उपेक्षित महसूस कर रहे हैं. इनकी बढ़ती उपेक्षा और नए दलबदलू नेताओं के बढ़ते प्रभाव से भाजपा में अंतर्द्वंद्व और अंतर्विरोध की खाई बढ़ती जा रही है. बावज़ूद इसके बिहार में बहाल होती शांति, सुरक्षा और विकास के निहितार्थ राजग समर्थित उम्मीदवार का विजय पताका इस बार भी लहरा सकता है, बशर्तें भाजपा के कैडर सवर्ण मतदाता, सुशासन के बंटाईदारी क़ानून से निर्भय और आम मतदाता और सरकारी विभागों में व्याप्त भ्रष्टाचार की त्रस्तता की दास्तान भूलकर मतदान करें. राजनीतिक विश्लेषकों के अनुसार राजद उम्मीदवार को विजयश्री का माला मिलना सहज प्रतीत नहीं होता है, क्योंकि पिछले विधानसभा एवं लोकसभा चुनावों में राजद के माय समीकरण का यहां क्षरण हुआ. इसका फल आगामी चुनाव में भी राजद को उठाना पड़ सकता है. लिहाज़ा पिछले दोनों चुनावों में जिस तरह यादव मतदाताओं ने राजद से बिदककर अन्य दलों के प्रत्याशियों को वोट दिया, इसके बाद अधिकांश मुस्लिम मतदाता भी उसका हिसाब अगले चुनाव में चुकता करने के मूड में हैं. बशर्ते किसी धर्मनिरपेक्ष दल द्वारा यहां कोई बेहतर और सशक्त मुस्लिम उम्मीदवार चुनावी समर में उतारा जाए. कयास लगाया जा रहा है कि सीवान के वर्तमान भाजपा विधायक एवं स्वास्थ राज्यमंत्री व्यासदेव प्रसाद और राजद के पूर्व मंत्री अवध बिहारी चौधरी के बीच कड़ी लड़ाई अगले चुनाव में होगी, जो अपने-अपने दलों के संभावित प्रत्याशी बताए जाते हैं. मुद्दाविहीन एवं लहरविहीन आगामी चुनाव में इन दोनों प्रत्याशियों की जीत भी कठिन होगी. इन पुराने नेताओं के चरित्र से वाक़िफ़ आम मतदाता अगर नए प्रत्याशियों के प्रति रुझान रखेंगे तो दोनों की स्थिति पतली हो सकती है. क्योंकि राजग में जहां कथित आंतरिक घमासान है, वहीं राजद से मुसलमानों के किनारे होने से उसकी स्थिति पहले जैसी नहीं रही. इसी आकलन के आधार पर अनेक दलों ने यहां मुस्लिम प्रत्याशी खड़ा करने का मंसूबा बनाया है. दूसरा यह कि यहां मुसलमानों के बीच साफ़ छवि के माने जाने वाले अवध बिहारी चौधरी की जीत के प्रति राजद के नेता-कार्यकर्ता उत्साहित हैं. आगामी विधानसभा चुनाव में इंडियन यूनियन मुस्लिम लीग बिहार के 64 विधानसभा क्षेत्रों में अपना उम्मीदवार खड़ा करेगा. इसके प्रत्याशी सीवान ज़िले के बड़हरिया, सीवान सदर, रघुनाथपुर और दरौंदा में भी खड़े होंगे. इसकी जानकारी देते हुए इंडियन यूनियन मुस्लिम लीग के ज़िलाध्यक्ष एवं बिहार श्रमजीवी पत्रकार यूनियन शाखा के महासचिव हाज़ी मो. असगर ने बताया कि सीवान विधानसभा क्षेत्र से वे संभावित उम्मीदवार हैं. अपनी जीत के प्रति आश्वस्त मो. असगर ने कहा कि आज़ादी के बाद सभी दलों ने मुसलमानों को केवल सब्ज़बाग दिखाकर शोषण किया है, जिसका प्रमाण सच्चर आयोग और रंगनाथ मिश्र आयोग की रिपोर्टें हैं. इससे साबित होता है कि भारत में दलितों से भी बदतर स्थिति मुसलमानों की है. मुसलमानों के मतों से सत्तासीन सियासतदारों ने कभी इस बिरादरी की बेहतरी के लिए कोई कार्य नहीं किया. इससे सीवान के मुसलमान मर्माहत हैं और इस बार अपनी बिरादरी के कुशल, कर्मठ और सुयोग्य उम्मीदवार को वोट देने पर एकमत होते जा रहे हैं. हिंदुओं में भी लोकप्रिय मो. असगर अपनी जीत के प्रति काफ़ी आशान्वित हैं. जानकारों की मानें तो मुसलमानों में भी पसमांदा के कारण अगली-पिछड़ी की राजनीति, अंदर से घमासान मचाए है. अगर मतदान तक एकमत नहीं हुए तो इस बिरादरी के मतों का बिखराव भी संभावित है. यहां हिंदुओं के एकमत मतदान की संभावना से आशान्वित अखिल भारतीय हिंदू महासभा के प्रांतीय कार्यकारी अध्यक्ष विश्वकर्मा चौहान अपनी जीत के प्रति काफ़ी आश्वस्त हैं. वह हिंदू महासभा के राष्ट्रीय एजेंडा को ही अपना चुनावी एजेंडा मानते हैं. उनका कहना है कि अब तो भाजपा भी तुष्टीकरण की राजनीति करने लगी है, जो देश के लिए विडंबनापूर्ण है. उन्होंने कहा कि राष्ट्रीय सुरक्षा, पर्यावरण एवं गोरक्षा के प्रति सरकार और जनता जागृत हो जाए तथा इस दिशा में सार्थक कार्य किया जाए तो इससे सीवान ही नहीं, देश का भी भला होगा. अत: यही मुद्दा मेरा चुनावी एजेंडा है.

कांग्रेस के नवधनाढ्य प्रत्याशियों में बहुचर्चित संभावित प्रत्याशी दिलीप कुमार अपनी जीत के प्रति आश्वस्त हैं. वे मानते हैं कि देश में सबसे बड़ी पार्टी कांग्रेस ही है, जिसकी राजनीति पूरी तरह धर्मनिरपेक्ष है और इसके साथ सभी जाति के मतदाता हैं. ख़ासकर इस बार श्रीमती सोनिया गांधी और राहुल गांधी की स्पष्ट एवं पारदर्शी नीति से देश के युवा मतदाता प्रभावित हैं. ज़िले के आठों विधानसभा क्षेत्रों में से सीवान विधानसभा क्षेत्र ही ऐसा है, जहां वैश्य बिरादरी के युवा नेता दिलीप कुमार को टिकट मिलने की संभावना प्रबल है. इस विधानसभा क्षेत्र से कांग्रेस के अनेक नवधनाढ्य प्रत्याशियों के बीच होड़ मची है, जो पटना और दिल्ली की दौड़ पिछले माह से ही लगा रहे हैं. हालांकि, वे इस घटनाक्रम से काफ़ी मर्माहत हैं कि ऐन मौक़े पर अनिल शर्मा और जगदीश टाइटलर को उनके पदों से आलाकमान ने विमुक्त कर दिया. दोनों तो अपने आपसी विवाद के कारण पदमुक्त हुए, किंतु टिकट की प्रत्याशा में इन संभावित उम्मीदवारों को करारा झटका लगा है. दूसरी ओर लंबे समय से कांग्रेस के लिए संघर्षरत पुराने और युवा कांग्रेसी नेता अपनी उपेक्षा से काफ़ी उदासीन हैं, जो अब समझने लगे हैं कि पार्टी की सेवा भावना से नहीं, बल्कि धन चढ़ाओ और टिकट पाओ की तर्ज़ पर वे कितने भाग्यहीन निर्धन प्रत्याशी हैं. लिहाज़ा कांग्रेस में खींचतान और अंतर्कलह बढ़ता जा रहा है. अंदर का यह घमासान चुनाव के दौरान भीतरघात को बढ़ावा दे सकता है. अनुशासनिक कार्रवाई के भय से पुराने नेता-कार्यकर्ता अभी मुखर नहीं हो रहे हैं. हालांकि नवधनाढ्य प्रत्याशी अपने-अपने पक्ष में पुराने कांग्रेसियों को एकजुट करने हेतु हर प्रयास कर रहे हैं. बावजूद इसके चुनाव में भीतरघात की आशंका से वे काफ़ी भयभीत हैं. अगले विधानसभा चुनाव में अनेक हिंदू एवं मुस्लिम दलीय और निर्दलीय युवा प्रत्याशियों के खड़े होने की संभावित चर्चाएं, दलीय दिग्गज उम्मीदवारों को ख़ासा नफ़ा-नुक़सान पहुचांएगे.

दिलीप कुमार

मौ. असगर

अवध बिहारी चौधरी

व्यासदेव

विश्वकर्मा चौहान

राजनीतिक विश्लेषकों के अनुसार राजद उम्मीदवार को विजयश्री की माला मिलना सहज प्रतीत नहीं होता है.

विधानसभा क्षेत्र सीवान

feedback@chauthiduniya.com

नए चेहरे उतरे मैदान में

आगामी विधानसभा चुनाव को लेकर टिकट पाने के लिए अभी से कोशी प्रमंडल के चौदह विधानसभा सीटों के लिए राजनीतिक कसरत तेज़ हो गई है. राजनीतिक दलों के अंदर इन सीटों में सबसे ज़्यादा चिंता 74 विधानसभा क्षेत्र सोनबरसा की बनी हुई है. सोनबरसा विधानसभा क्षेत्र को इस बार अनुसूचित जाति के लिए आरक्षित कर दिया गया है. परिसीमन आयोग की चाबुक से घायल इस विधानसभा सीट को अपनी बपौती मानने वाले नेताओं का रंग उड़ चुका है, लेकिन आरक्षित सीट होने की वजह से अनुसूचित जाति के राजनीतिज्ञों के क़िस्मत का ताला ही मानो खुल गया है. ज़िले भर से अनुसूचित जाति के राजनीतिक कार्यकर्ता जहां इस लॉटरी को पाने के लिए अभी से लालायित हैं, वहीं वरीय दलित नेताओं की नज़रें भी इस सीट पर टिकी हैं.

इस सीट के आरक्षित हो जाने के कारण सबसे ज़्यादा नुक़सान गैर अनुसूचित जाति के निर्दलीय विधायक किशोर कुमार मुन्ना, पूर्व मंत्री अशोक कुमार सिंह एवं राजद नेता रंजीत यादव को हुआ है. वर्तमान में इस सीट पर क़ाबिज़ निर्दलीय विधायक किशोर कुमार मुन्ना की राजनीतिक टकराहट राजद शासन के तत्कालीन मंत्री अशोक कुमार सिंह से होती रही है. अशोक सिंह फिलहाल जनता दल यू के साथ हैं. 14वें विधानसभा चुनाव में लालू प्रसाद ने पूर्व सांसद रंजीता रंजन के कहने पर युवा नेता रंजीत यादव को टिकट तो दिया था, पर वह नीतीश कुमार की हवा के आगे जीत का परचम नहीं लहरा सके. अब उन सबकी की नज़र सोनबरसा विधानसभा क्षेत्र के एक प्रखंड सौर बाज़ार के सहरसा विधानसभा क्षेत्र में शामिल हो जाने की वजह से उसपर टिकी है. इससे सोनबरसा व सहरसा विधानसभा क्षेत्र का चुनाव एक-दूसरे की गणित पर निर्भर करता है. सोनबरसा के लिए अनुसूचित जाति के प्रत्याशी का चयन सहरसा विधान सभा से जोड़कर अगर नहीं किया जाता है, तो किसी भी दल के लिए इस सीट को हासिल कर पाना काफ़ी मुश्किल होगा.

वैसे अगर परिसीमन पर ग़ौर करें तो 74 सोनबरसा विधानसभा क्षेत्र में पतरघट, सोनबरसा व सीडी ब्लॉक बनमा इटहरी को शामिल किया गया है. इसके चलते अनुसूचित जाति समेत कई अन्य जातियों का समीकरण काफ़ी बदल गया है. इस विधानसभा क्षेत्र में मतदाताओं की कुल संख्या 2 लाख 25 हज़ार 813 है. इसमें एक लाख 17 हज़ार 357 पुरुष व एक लाख 8 हज़ार 456 महिला मतदाता शामिल हैं, जबकि मतदान केंद्रों की संख्या 231 है. एक अनुमानित आंकड़े के मुताबिक़ इस विधानसभा क्षेत्र में जातीय मतदाताओं में राजपूत 30 हज़ार, ब्रा्मण 21 हज़ार, कायस्थ एक हज़ार, अल्पसंख्यक 18 हज़ार, यादव 20 हज़ार, वैश्य 40 हज़ार, मुसहर 20 हज़ार, पासवान 10 हज़ार, राम 7 हज़ार, पासी 5 हज़ार, आदिवासी 5 हज़ार, अति पिछड़ा 40 हज़ार और कोइरी-कुर्मी 10 हज़ार के आसपास है. इसमें अति पिछड़े मतदाताओं के वोट ही निर्णायक साबित होंगे. जिसके पलड़े में उनका वोट जाएगा उसकी जीत सुनिश्चित मानी जाएगी.

विभिन्न राजनीतिक दलों से ताल्लुक रखने वाले युवा तुर्कों में इस सीट से ज़िला पार्षद अशोक पासवान जदयू, मनोज पासवान कांग्रेस, भाजपा से पूर्व ज़िला पार्षद अमीर राम, राजद से डा.शशिभूषण की पत्नी गीता देवी व सौर बाज़ार प्रखंड प्रमुख योगेंद्र राम, मुखिया प्रदीप पासवान, भाकपा माले नेता विक्की राम, बसपा के सुरेश राम एवं लोजपा से ठाकुर पासवान व प्रेम कुमार सुमन चुनाव लड़ने के मूड में है. लोजपा सुप्रीमो रामविलास पासवान की धर्मपत्नी रीना पासवान के भी इस सीट से चुनाव लड़ने की अटकलें क्षेत्रीय जनता लगा रही है. हालांकि पासवान की ओर से इस प्रकार की अब तक कोई राजनीतिक चर्चा नहीं है. फिर भी सोनबरसा की जनता पासवान की पत्नी को सबल प्रत्याशी की नज़र से देख रही है. हालांकि लोजपा के प्रदेश महासचिव केशव सिंह ने अटकलों को ख़ारिज़ करते हुए कहा कि सुप्रीमो के परिवार से कोई भी यहां से चुनाव नहीं लड़ेगा. डा. शशिभूषण की सेवा भावना से अभिभूत क्षेत्र की जनता उनकी पत्नी गीता देवी को दलीय भावना से उपर उठकर देख रही है.

अशोक पासवान, मनोज पासवान एवं गीता देवी टिकट के संभावित दावेदारों में मजबूत स्थिति में दिखाई दे रहे हैं. इन सब का मानना है कि पार्टी अगर हमें टिकट देती है तो हम भी जीत का सेहरा बांध सकते हैं. अशोक पासवान ज़िला पार्षद के साथ-साथ कोशी में जनता दलयू के कद्दावर युवा नेता माने जाते हैं.

विधानसभा क्षेत्र सोनबरसा

सोनबरसा विधानसभा क्षेत्र को इस बार अनुसूचित जाति के लिए आरक्षित कर दिया गया है. परिसीमन आयोग की चाबुक से घायल इस विधानसभा सीट को अपनी बपौती मानने वाले नेताओं का रंग उड़ चुका है.

एस. सोनी
feedback@chauthiduniya.com

ठाकुर पासवान

अशोक पासवान

रीना पासवान

गीता देवी

अमीर राम

जदयू किसी की बपौती नहीं

गोपालगंज से जनता दलयू के सांसद पूर्णमासी राम के लिए किसी पर भड़कना कोई नई बात नहीं है. पहले भी पूर्णमासी राम नीतीश कुमार से मतभेद को लेकर कई मौक़ों पर भड़क चुके हैं. राजद शासनकाल में भी पूर्णमासी राम की साधु यादव, सुभाष यादव और लालू यादव से अक्सर ठन जाती थी. राजद में घुटन महसूस करने और न्याय नहीं पाने से तंग आकर पूर्णमासी राम को 2005 में जनता दलयू का दामन थामना पड़ा. उन्हें उम्मीद थी कि जनता दलयू के संगठन और भावी मुख्यमंत्री से न्याय मिलेगा. उन्होंने 10 जुलाई 2005 को न्याय रथयात्रा कार्यक्रम में बढ़ चढ़कर हिस्सा भी लिया. नीतीश कुमार को स्वर्णमुकुट पहनाकर उनकी जीत का ऐलान किया, लेकिन उनका यह सपना तार तार हो गया. भारी बहुमत से जीतने के बाद भी सरकार बनाते समय मुख्यमंत्री ने दाग़ी होने का आरोप लगाकर उन्हें मंत्रिमंडल में आने से रोक दिया. मंत्रिमंडल में शामिल नहीं होने का घाव अभी भरा भी नहीं था जब 2006 के नगरपरिषद के चुनाव बाद बेटे अजय राम को चेयरमैन बनाने के प्रयास को लेकर संगठन के लोगों द्वारा यह आरोप लगाया गया कि पूर्व की भांति पूर्णमासी राम बेटे को चेयरमैन बनाने के लिए दहशत और आतंक फैला रहे हैं.

इस पर पूर्णमासी मर्माहत हो उठे. दहशत और आतंक के आरोप पर तत्कालीन पुलिस अधीक्षक विकास वैभव ने उन्हें चौबीस घंटे तक बगहा थाने में बिठाया भी. इस घटना के बाद मुख्यमंत्री द्वारा एसपी के ख़िलाफ़ कोई एक्शन नहीं लिए जाने पर पूर्णमासी राम मुख्यमंत्री पर भड़के और कहा कि बगहा की जिस धरती से न्याय रथ यात्रा निकली थी, उसी धरती से नीतीश सरकार की अर्थी निकलेगी. इस घटना के बाद पूर्णमासी राम को लगा कि इस दल में अपनी इज़्ज़त, आबरू की सुरक्षा नहीं हो सकती है. उसके बाद शोषण मुक्तिसेना के बैनर तले अपने जनशक्ति का प्रदर्शन बगहा अनुमंडल परिसर में करने के साथ नीतीश कुमार के विरोध में खुला बगावत किया. उसके बाद से मुख्यमंत्री के विरोध में पूर्णमासी राम के भड़कने का सिलसिला शुरू हो गया, जो अब तक जारी है. हालांकि जनता दलयू के कार्यकर्ताओं के अनुसार विरोध और भड़कने से रोकने के लिए मुख्यमंत्री ने उनके साथ बैठक करके पनपी खाई को दूर करने का प्रयास किया. गोपालगंज संसदीय चुनाव क्षेत्र से चुनाव लड़ने का ऑफर देकर उन्हें पटाने की कोशिश की. लोकसभा चुनाव में सीएम के मेहनत से पूर्णमासी राम की जीत भी हुई. लेकिन अपने द्वारा खाली किए गए बगहा विधान सभा सीट के उपचुनाव में बेटे को पार्टी का टिकट दिए जाने की मांग उन्होंने की. विरोधी सांसद रह चुके कैलाश बैठा की जगह किसी दूसरे कार्यकर्ता को टिकट दिए जाने का प्रस्ताव भी उन्होंने मुख्यमंत्री के सामने रखा. मांग पूरा न होते देखकर फिर पूर्णमासी राम मर्माहत हुए, पर इसका विरोध कर नहीं पाए.

बेटे को टिकट नहीं मिलने पर बेटा विजय राम अपने पुराने पहचान के बल पर राजद से टिकट लपककर 2009 बगहा विधानसभा का उपचुनाव लड़े. बेटे के चुनाव लड़ने और पूर्णमासी राम द्वारा मदद करने पर जनता दलयू के लोगों ने चुनावी सभाओं में पूर्णमासी राम की काफ़ी फज़ीहत की. वहीं पार्टी संगठन ने जीते हुए विधायक कैलाश बैठा के आरोप पर निलंबन करके दल से बाहर जाने की चेतावनी भी दे डाली. चुनावी सभाओं में फजीहत और निलंबन की कार्रवाई से पूर्णमासी राम का भड़कना शुरू हो गया. उनका कहना था कि जिन लोगों ने नीतीश कुमार और शरद यादव का पुतला लोकसभा का टिकट नहीं मिलने पर सरेआम फूंका, उनके ख़िलाफ़ कोई कार्रवाई नहीं की और मुझ पर झूठा इल्ज़ाम लगाया गया. सभी जानते हैं कि 1990 से मेरा बड़ा बेटा विजय राम अलग है. वह अगर किसी दल से चुनाव लड़ता है तो इसमें मेरा क्या कसूर है. लोगों में यह चर्चा है कि मुख्यमंत्री द्वारा बार-बार उपेक्षा करने से आजिज आकर मुख्यमंत्री से दो-दो हाथ कर लेना ही पूर्णमासी राम ने मुनासिब समझा. जहां तक इस बार भड़कने की बात है तो उनका सीधा सा जबाब है कि बर्दाश्त की भी हद होती है. पहले इस दल में दागी बताकर मुझे अपमानित किया गया, आप ही बताइए आप मीडियावाले हैं, आप नहीं जानते कि नीतीश कुमार एक हत्या के मामले में दागी हैं. इस आधार पर तो उन्हें भी मुख्यमंत्री पद से त्यागपत्र दे देना चाहिए. लोकतंत्र में सबका विश्वास है. मेरा बेटा वार्ड का चुनाव लड़ा तो मुझ पर आरोप लगाया गया कि दहशत फैला रहे हैं, लेकिन लोगों ने चाहा तो बेटा को चेयरमैन बनाया. तत्कालीन सांसद वैद्यनाथ महतो और बगहा विधायक कैलाश बैठा ने साजिश करके चेयरमैन पद से हटवाया, किंतु जैसे ही वार्ड पार्षदों ने उनके चेहरे को पहचान लिया तो फिर से मेरे बेटे को चेयरमैन बनाया. इतना ही नहीं, मेरे शुभचिंतकों को भी प्रताड़ित किया गया है. दलित और पिछड़े लोगों पर जुल्म ढ़ाया जा रहा है, जिसको मैं सहन नहीं कर पा रहा हूं. मेरे द्वारा जो भी मांग इस क्षेत्र के विकास के लिए किया जाता है, उसकी अनदेखी की जाती है. बगहा को राजस्व जिला बनाने की मांग न्याय यात्रा के समय से कर रहा हूं, पर जानबूझकर इसे नहीं माना गया. मुख्यमंत्री द्वारा जितनी घोषणाएं की गईं, एक भी धरातल पर नहीं उतरी. 19 जनवरी 2009 को विकास यात्रा के समय बगहा अनुमंडल मैदान में 126 करोड़ रुपए के विकास योजना की घोषणा मुख्यमंत्री ने की, पर कितना विकास हुआ आप स्वयं जाकर क्षेत्र में देख लीजिए. मैं मंच से बगहा को जिला बनाने की मांग, यहां संबद्धता प्राप्त महाविद्यालयों को अंगीभूत करने की मांग के साथ कई महत्वपूर्ण मांग किया था, पर एक भी मांग को नहीं माना गया. यह पूछे जाने पर कि आप गोपालगंज के सांसद हैं, तो बगहा के विकास के लिए क्यों चिंतित हैं, यहां के सांसद और विधायक विकास की चिंता करेंगे, उनका कहना था कि बगहा मेरी मातृभूमि है, चिंता करना स्वभाविक है. मैं दबंगों को यहां जनता दलयू के टिकट तले चुनाव लड़ने का विरोध करूंगा. उपचुनाव में मैने स्पष्ट कहा था कि किसी कार्यकर्ता को टिकट दिया जाए, लेकिन ऐसा नहीं हुआ. अबकी बार अनदेखी नहीं होने दूंगा. जहां तक दल में रहने की बात है तो जनता दलयू किसी की जायदाद नहीं है कि जब चाहे मुझे बाहर कर दिया जाए. जनता दलयू में मैं हूं और रहूंगा. बगहा के स्वाभिमान और दलितों के हित के लिए ज़रूरत पड़ने पर सांसद पद छोड़कर बगहा विधान सभा क्षेत्र से चुनाव लड़ूंगा.

प्रो. अरविन्द नाथ तिवारी
feedback@chauthiduniya.com

Postal Regn. No. DL/ND-11/6139/2009-11, RNI No. 45843/86

चौथी दुनिया

दिल्ली, 21 जून–27 जून 2010

फ़िल्मों में लीड रोल्स के अलावा वह आइटम सांग में भी खुलकर हाथ आज़मा रही हैं.

महंगी पड़ी दो नावों की सवारी

झारखंड के राजनीतिक संकट का पटाक्षेप राष्ट्रपति शासन के रूप में हुआ. मुख्यमंत्री शिबू सोरेन ने विश्वास मत का सामना करने से पहले ही आत्मसमर्पण कर दिया. भाजपा द्वारा शिबू के विरोध में मत देने की घोषणा के साथ ही उन्होंने त्यागपत्र देने का फ़ैसला ले लिया. संकट की शुरुआत शिबू सोरेन के कारण ही हुई थी और पटाक्षेप भी उन्हीं के कारण हुआ. मात्र पांच माह के अंतराल में झारखंड राज्य फिर राष्ट्रपति शासन के हवाले हो गया. दोनों ही बार झामुमो सुप्रीमो शिबू सोरेन की पदलोलुपता और अदूरदर्शिता के कारण यह नौबत आई. यह तीसरा मौक़ा है जब शिबू सोरेन ने मुख्यमंत्री के रूप में विश्वास मत हासिल करने के पहले ही इस्तीफ़ा दे दिया. इससे पूर्व 9 दिन मुख्यमंत्री रहने के बाद 11 मार्च 2005 को और तमाड़ चुनाव हारने के बाद काफ़ी दबाव में 18 जनवरी 2009 को उन्होंने इस्तीफ़ा दिया था. उनके इस्तीफ़े के बाद कोई सरकार बनाने का दावा करने आगे नहीं आया तो राष्ट्रपति शासन लगाना पड़ा था. झामुमो या शिबू सोरेन के लिए कोई पद हासिल करना या उसका त्याग करना कोई बड़ी बात नहीं है. यह संसदीय राजनीति में उनकी नियति रही है. वह पद को प्रतिष्ठा का विषय मानते हैं, उसकी ज़िम्मेदारियों से कोई लेना-देना नहीं रखते. झारखंड के मुख्यमंत्री के रूप में उनकी उपलब्धि शून्य रही है. इसके बावजूद वह उस पद पर बैठने के लिए लालायित रहते हैं. इसे इत्तेफ़ाक ही कहेंगे कि तीनों बार वे लोकसभा सदस्य रहते हुए मुख्यमंत्री बने. पहली बार तो 9 दिनों के अंदर ही कुर्सी छोड़नी पड़ी. दूसरी बार विधानसभा चुनाव लड़ने की औपचारिकता पूरी करने में तमाड़ से चुनाव हार गए. उसके बाद भी वे कुर्सी छोड़ने को आसानी से तैयार नहीं हो रहे थे. उन्होंने ऐसा माहौल बना दिया कि राज्य को राष्ट्रपति शासन के हवाले होना पड़ा. इस बार तो वह विधानसभा चुनाव लड़ने के लिए एक सीट तक खाली नहीं करा सके. उनके दल के विधायक पौलुस सुरिन ने सीट छोड़ने की पेशकश भी की तो तोरपा से चुनाव लड़ने का साहस नहीं किया. दरअसल झारखंड आंदोलन के इस स्वयंभू योद्धा ने पदलोलुपता में अपनी छवि इतनी धूमिल कर ली है कि अब उन्हें कोई गंभीरता से नहीं लेता. इस बार तो उन्होंने अपनी पूरी पार्टी को राजनीतिक दलों के लिए अछूत बना दिया. अब उनपर कोई दल या गठबंधन भरोसा नहीं कर पाएगा. आज शिबू सोरेन से यह सवाल पूछा जाना चाहिए कि अलग झारखंड की लड़ाई उन्होंने जनता की बुनियादी समस्याओं के निदान और राज्य के संतुलित विकास के लिए लड़ी थी या इस राज्य को अपनी पारिवारिक संपत्ति में तब्दील कर देने के लिए. उनके पास राज्य के विकास की कोई योजना, कोई इच्छाशक्ति तो दिखाई पड़ी नहीं. बस एक ही राग अलापते रहे कि मुझे सीएम बनाओ, मेरे बेटे को डिप्टी सीएम बनाओ. संघर्ष के साथियों का भी कभी खयाल नहीं रखा. गुरुजी का वश चले तो झारखंड को कबीलाराज में तब्दील कर उसके सरदार बन बैठें. कितनी शर्म की बात है कि झारखंड राज्य के गठन के 10 वर्ष होने को हैं, लेकिन अभी तक यहां के नेता यह भी अहसास नहीं दिला सके कि उनके पास इस राज्य के विकास की कोई योजना या सरकार चलाने की न्यूनतम योग्यता भी है. इसीलिए इस छोटी सी अवधि में इस राज्य ने 7 मुख्यमंत्री, आठ मुख्य सचिव और सात राज्यपाल देख लिए.

दो बार राष्ट्रपति शासन लग चुका. झारखंड राज्य के गठन के बाद जनहित का कोई काम भले ही नहीं हुआ लेकिन नेताओं, अधिकारियों और दलालों ने घोटालों का अंबार लगा दिया. पिछले एक माह के अंदर राजनीतिक सौदेबाज़ी और पल-पल बदलती बयानबाज़ी के कारण ऐसा माहौल बन गया है कि कोई भी राजनीतिक दल या गठबंधन सरकार बनाने के लिए आगे आना नहीं चाहता. संसदीय लोकतंत्र से झारखंड के लोगों का मोहभंग हो चला है. वे राष्ट्रपति शासन को बेहतर विकल्प मान रहे हैं. चुनी हुई सरकारों के कारनामों को देखते हुए अब तो इसे केंद्र शासित राज्य घोषित कर दिए जाने की मांग भी की जाने लगी है. सरकार चलाने का शऊर नहीं और इतनी पेचीदगी पैदा की जाती है कि पूछिए मत. जिन्हें जनता स्वीकार करने को तैयार नहीं, उनकी शर्त होती है कि ग़ैरआदिवासी सीएम स्वीकार नहीं करेंगे. जिनके अंदर झारखंड के किसी भी सीट से चुनाव लड़ने का आत्मबल नहीं, वे झारखंड का मसीहा बनने का ख्वाब देखते हैं. पिछले एक माह के अंदर झामुमो और भाजपा के बीच सत्ता में हिस्सेदारी को लेकर जिस तरह की खुली सौदेबाज़ी चली वह संसदीय लोकतंत्र के इतिहास में कहीं नहीं हुई होगी.

नवल किशोर सिंह

feedback@chauthiduniya.com

अब तक के मुख्यमंत्री

बाबूलाल मरांडी-15 नवंबर 2000 से 17 मार्च 2003
अर्जुन मुंडा-18 मार्च 2003 से 2 मार्च 2005
शिबू सोरेन-2 मार्च 2005 से 12 मार्च 2005
अर्जुन मुंडा-12 मार्च 2005 से 18 सितंबर 2006
मधु कोड़ा- 18 सितंबर 2006 से 27 अगस्त 2008
शिबू सोरेन-27 अगस्त 2008 से 18 जनवरी 2009
शिबू सोरेन-30 दिसंबर 2009 से 30 मई 2010

झारखंड के राज्यपाल

प्रभात कुमार-15 नवंबर 2000 से 3 फरवरी 2002
वीसी पांडे-4 फरवरी 2002 से 14 जुलाई 2002
एन रामा जोइस-15 जुलाई 2002 से 11 जून 2003
वेद मारवाह-12 जून 2003 से 9 दिसंबर 2004
सैय्यद सिब्ते रजी-10 दिसंबर 2004 से 23 जुलाई 2009
के शंकर नारायणन-26 जुलाई 2009 से 21 जनवरी 2010
एमओएच फारुख-22 जनवरी 2010 से वर्तमान तक

शिबू ने भाजपा की लुटिया डुबाई

उसका एक सूत्री कार्यक्रम था किसी क़ीमत पर कांग्रेस-झाविमो को सरकार बनाने से रोकना. ख़ासतौर पर उसे बाबूलाल से ख़तरा था. पहली बार झाविमो के प्रत्याशियों को चुनाव मैदान में उतार कर और 11 सीटों पर जीत हासिल कर उन्होंने यह अहसास दिला दिया था कि आरएसएस के संगठक के रूप में उन्होंने जो कुछ सीखा, वह अभी भी उनके पास मौजूद है और कम समय में ही वह मज़बूत संगठन तैयार कर चुके हैं. कांग्रेस ने ज़रूर इस मामले में काफ़ी सतर्कता के साथ अपनी भूमिका निभाई. दिसंबर 2009 में विधानसभा चुनाव के बाद यदि कांग्रेस-झाविमो ने जोड़-तोड़ किया होता तो वे सरकार बना सकते थे. लेकिन भाजपा ने जब ग़ैरसैद्धांतिक गठबंधन कर झामुमो के नेतृत्व में सरकार बनाने का फ़ैसला किया तो कांग्रेस ख़ामोश रही. उसके केंद्रीय नेताओं को पता था कि यह सरकार चलेगी नहीं और जनता का विश्वास खो बैठेगी. वही हुआ भी. 27 अप्रैल को शिबू सोरेन ने लोकसभा में अचानक पहुंचकर भाजपा के कटौती प्रस्ताव के विरोध में वोट दिया तो उन्हें उम्मीद थी कि कांग्रेस आलाकमान ख़ुश होकर उन्हें केंद्रीय मंत्रिमंडल में शामिल कर लेगा और झारखंड के सीएम का पद वे अपने बेटे हेमंत के हवाले कर देंगे. उस वक्त तक इतना तय हो चुका था कि वह विधानसभा चुनाव लड़ने की औपचारिकता पूरी नहीं कर पाएंगे और उन्हें 29 जून तक सीएम की कुर्सी छोड़नी पड़ जाएगी. लेकिन कांग्रेस ने उनकी वफ़ादारी का कोई सिला नहीं दिया. भाजपा के साथ रिश्तों में कड़वाहट आने के बाद वह यूपीए और एनडीए दोनों के संपर्क में रहकर दो नावों की सवारी करते रहे. उनकी कोशिश थी कि जिसके साथ सौदा पट जाए, उसके साथ आगे की सवारी करें. लेकिन उनकी सारी होशियारी, सारा गणित धरा का धरा रह गया और वही गति प्राप्त हुई जो दो नावों की सवारी में होती है. अब राज्य की जनता आशान्वित है कि राष्ट्रपति शासन के दौरान निश्चित रूप से जनहित के कार्य किए जाएंगे और शासन व्यवस्था को चुस्त दुरुस्त कर बेहतर गवर्नेंस का प्रदर्शन किया जाएगा. इस अवधि में जो भी सकारात्मक कार्य होंगे, उनका लाभ कांग्रेस-झाविमो गठबंधन को ही मिलेगा क्योंकि राष्ट्रपति शासन की बागडोर केंद्र सरकार और पर्दे के पीछे कांग्रेस के ही हाथों में होगी.

feedback@chauthiduniya.com

विधवा ने किया कमाल पीसीएस परीक्षा में धमाल

दुर्भाग्य को किस तरह सौभाग्य में बदला जाता है, अनुपमा ने यह कर दिखाया. शादी के बमुश्किल साल भर बाद विधवा हो गई अनुपमा ने अपने पति की निशानी के रूप में पल रहे बच्चे को भी पैदा किया और संकल्प एवं मेहनत के बूते बिहार लोक सेवा आयोग की परीक्षा भी पास कर ली. उसने न केवल आयोग की परीक्षा पास की बल्कि 15वां स्थान भी प्राप्त किया. महिला प्रतिभागियों में अनुपमा दूसरे नंबर पर रहीं. अब अनुपमा बिहार में प्रशासन संभालेंगी और उनकी संघर्षगाथा देश भर की महिलाओं के बीच एक सकारात्मक संदेश देगी. अनुपमा की शादी 1998 में हुई और 1999 में ही उसके पति की मृत्यु भी हो गई. ग्रामीण पृष्ठभूमि की अनुपमा की लगातार चली संघर्ष यात्रा ने 12 साल बाद चौंकाने वाला कारनामा कर दिखाया. दोहरी ज़िम्मेदारियों को सर पर उठाते हुए अनुपमा अपने बेटे को भी संवारती रही और अपना करियर भी संवारने में लगी रही. उसके कठिन परिश्रम का परिणाम इस वर्ष आया जब बिहार प्रशासनिक सेवा परीक्षा के परिणाम आए और उसमें अनुपमा को 15वां स्थान प्राप्त हुआ. यही नहीं, राज्य की सभी महिला प्रतिभागियों में अनुपमा दूसरे स्थान पर रही. पहले स्थान पर पहुंचने में वह एक-आध अंक से ही चूक गई. अनुपमा की संघर्षगाथा किसी फ़िल्मी पटकथा से कम नहीं. स्नातक तक शिक्षा प्राप्त करने वाली दरिगांव के शिक्षक के घर पैदा हुई अनुपमा की शादी सासाराम शहर के गौरक्षणी निवासी शिक्षक मदन मोहन सिंह के दूसरे पुत्र टुना सिंह के साथ 1998 में हुई थी. 1999 में उसके पति का असामयिक निधन हो गया. तब तक अनुपमा के बारे में घर-समाज के लोग यही सोचते थे कि वह एक सामान्य पढी-लिखी गृहिणी है. शादी के महज़ एक साल बाद विधवा हो गई बेटी अनुपमा ने अपने पिता दिनेश प्रसाद सिंह की प्रेरणा से जिंदगी को नया स्वरूप देने का काम शुरू किया. मायके में उसने पुत्र को जन्म दिया. परिवार समाज में लोग कई किस्म की सलाह देते. कोई कहता शादी कर लो तो कोई कहता कहीं छोटी-मोटी नौकरी कर लो. लेकिन मन में दृढ संकल्प लिए अनुपमा ने एकाग्रचित्त होकर अपना लक्ष्य साधे रखा. इसका परिणाम 12 साल बाद सामने आया. अब अनुपमा बिहार प्रशासनिक सेवा की होनहार अफसर के रूप में दिखेंगी. इस सफलता के बाद पिता के घर पहुंची अनुपमा अपना अतीत याद कर भावुक हो जाती हैं. कभी पिता की तरफ देखती हैं तो कभी बगल में खेल रहे बेटे की ओर. केवल इतना ही कह पाती है कि दिल में जज़्बा हो और सामने हो लक्ष्य तो इसे पाने से कोई रोक नहीं सकता.

feedback@chauthiduniya.com

मोना की रफ्तार

फ़िल्मिस्तान के पांचवे मंजिले पर भोजपुरी क्वीन मोनालिसा *मृत्युंजय* फ़िल्म के एक जोरदार आइटम सांग की शूटिंग कर रही थीं. कोरियोग्राफर कनु मुखर्जी समेत फ़िल्म की मुख्य कलाकार रिंकू घोष भी इस अदाकारा को बधाई देने पहुचीं. बॉलीवुड की कुछ बी ग्रेड फ़िल्मों से चर्चा में आई मोनालीसा को इस बात का अंदाज़ा भी नहीं होगा कि एक दिन वह भोजपुरी फ़िल्मों की नंबर वन अभिनेत्रियों की कतार में शामिल होंगी. दिनेश नाल के साथ फ़िल्म *कहां जइबा राजा नज़रिया लड़ा के* से डेब्यू करने वाली मोनालीसा फ़िल्म दर फ़िल्म ख़ुद को स्थापित कर रही हैं. पिछले दिनों अपनी आगामी फ़िल्म सड़क के मुहूर्त के दौरान काफ़ी चहकती हुई नज़र आईं. इस फ़िल्म में वह अपने फेवरिट को-स्टार रवि किशन के साथ काम कर रही हैं. वहीं दूसरी ओर रानी चटर्जी भी उनके साथ स्क्रीन स्पेस शेयर करती नज़र आएंगी. चर्चा है कि यह फ़िल्म महेश भट्ट निर्देशित सड़क की रीमेक है. पर मोना इस बात से साफ़ इंकार करती हैं. उनके मुताबिक़ इस फ़िल्म की कहानी बिल्कुल नई है. सिर्फ़ नाम एक होने से यह ज़रूरी नहीं कि कहानी भी मिलती हो. फ़िल्मों में लीड रोल्स के अलावा वह आइटम सांग में भी वह खुलकर हाथ आज़मा रही हैं. फ़िल्म *शहरवाली जान मारेली* और *प्रेम के रोग भइल* में उनके आइटम सांग को ख़ूब वाहवाही मिली थी और अब वह फ़िल्म *मृत्युंजय* में भी आइटम सांग करने जा रही हैं. कुल मिलाकर उन्होंने लगभग हर क्षेत्र में अपने जलवों की बौछार कर रखी है. उम्मीद करते हैं कि उनके करियर की गाड़ी फ़िल्म सड़क से और तेज हो जाए.

चौथी दुनिया ब्यूरो

feedback@chauthiduniya.com

He is Wise who knows the Sources of knowledge

Wise Path Tutorial

(A unit of Wisepath Learning Resources Pvt. Ltd.)

For IIT - JEE/AIEEE/PMT

Announces Scholarship Test for Medical & Engineering Aspirants

Win Scholarship upto 100%

No Registration Fee

Test on : 30.05.2010
: 13.06.2010
: 27.06.2010

Download or fill online form on : www.wisepath.co.in

Phone line Registration 0612 - 6456534, 8002261674

Venue : Wisepath Group of Institution Hotel Samrat Lane, Bander Bagicha, Near Dak Banglow Chowk, Patna

ADMISSION FOR Academic Session 2010-11

Course	Qualification	Batch Starting From
Foundation For: X to XI moving Students	Above 65% in Maths & Science in IX th Exam	11th June 2010
Target For: XI to XII Appearing/Pass Students	Above 65% in Maths & Sc. in Xth Exam/Above 65% in PCM in XIIth Exam	18th June 2010

SALIENT FEATURES

• Teaching by highly talented IIT Experienced Faculty. • Every week Common Practice Test and Analysis • Regular Video conference with subject experts • Well stocked Library with A.C. reading room facility • A full fledged doubts clearing cell.

: For Details Contact :
507, Kaushalya Estate ,Near Dak Bunglow, Bander Bagicha, Patna -800 001,
Ph - 0612-6456534, 8002201674, 9934695555

चौथी दुनिया

मध्य प्रदेश

छत्तीसगढ़

दिल्ली, 21 जून-27 जून 2010

www.chauthiduniya.com

भोपाल न्यायिक त्रासदी

भोपाल गैस त्रासदी का शिकार हुए लोगों को न्याय मिला या 25 साल के बाद उनके साथ हुआ भद्दा मज़ाक! गैस त्रासदी के 25 साल के बाद न्यायिक त्रासदी ने एक बार फिर देश-दुनिया को हिला कर रख दिया है. भोपाल में 2/3 दिसंबर 1984 की रात का मंज़र एक बार फिर सामने नाच उठा है, उन लोगों की आंखों के सामने, जिनकी आंखों में संवेदनशीलता का पानी अब भी बहता है...

संध्या पाण्डे

पच्चीस साल पहले विश्व की भीषणतम औद्योगिक त्रासदी झेलने वाले भोपाल के लाखों पीड़ितों को आख़िर क्या मिला? इस पर बहस तो चलेगी पर पीड़ितों को क्या मिलेगा? भोपाल हादसे में 15274 मौतों के बाद लाखों लोगों को तिल-तिल कर मरने के लिए बाध्य करने वाली यूनियन कार्बाइड और उसके अमेरिकन अध्यक्ष वारेन एंडरसन सहित आठ अन्य सज़ायाफ्ता मुजरिम भारतीय न्याय प्रक्रिया की कमज़ोरियों का लाभ उठाकर आज भी आज़ाद हैं. वर्षों पहले हुई इस घटना के पीड़ितों के मरने का सिलसिला आज भी जारी है. पुलिस सीबीआई सब अपने-अपने दायित्वों से मुक्त हो चुकी हैं, लेकिन लाखों गैस पीड़ितों की मन:स्थिति समझने के लिए शायद कोई नहीं है.

दो और तीन दिसंबर 1984 की रात मध्य प्रदेश की राजधानी भोपाल में यूनियन कार्बाइड से निकली ज़हरीली गैस ने एक ही रात पांच हज़ार से अधिक लोगों को मौत की नींद सुला दिया. त्रासदी इतनी भयंकर थी कि भोपाल की सड़कें, चौराहे, पार्क लाशों से भरे थे. क़ब्रगाह और श्मशान घाटों में अंतिम क्रियाकर्म के लिए स्थान ही नहीं बचा था. अस्पतालों के शवगृह भर चुके थे. पोस्टमार्टम करने वाले हाथ थक चुके थे, पर मौत थी कि शहर को निगल जाने के लिए आमादा थी. दो-तीन दिसंबर की रात यूनियन कार्बाइड के टैंक-610 से निकली गैस का प्रभाव इतना घातक होगा, इसे किसी ने सोचा न था. शहर में मौत का तांडव हिरोशिमा और नागासाकी की याद दिला रहा था. पच्चीस साल तक लगातार चली न्यायिक प्रक्रिया में राज्य की सरकारों ने यूनियन कार्बाइड के अध्यक्ष वारेन एंडरसन को प्रकरण से बाहर निकलने का पूरा मौक़ा दिया. घटना के चार दिन बाद एंडरसन 7 दिसंबर 1984 को यूनियन कार्बाइड की खोज ख़बर लेने भोपाल आया था. जहां उसे क़ानूनी तौर पर गिरफ्तार कर पच्चीस हज़ार रुपये की मुसरते पर इस हिदायत के साथ छोड़ा गया था कि न्यायिक प्रक्रिया में भाग लेने के लिए वह समय-समय पर ज़रूरत के अनुसार भारत आता रहेगा, पर एंडरसन कभी भारत वापस नहीं आया, अंतत: न्यायालय ने एंडरसन को भगोड़ा क़रार दे दिया. 7 जून 2010 को घटना के पच्चीस साल बाद भोपाल के मुख्य जुडीशियल मजिस्ट्रेट मोहन तिवारी की अदालत से होने वाले फ़ैसले का भोपाल सहित विश्व के सभी मानव अधिकार संगठन इंतजार कर रहे थे, निर्णय आया कि यूनियन कार्बाइड भोपाल के अध्यक्ष और प्रमुख केशव महेंद्र, प्रबंध संचालक विजय गोखले, वर्क्स मैनेजर जे. मुकुंद, प्रोडक्शन मैनेजर एस.पी. चौधरी, प्लांट अधीक्षक के.वी. शेट्टी, प्रोडक्शन असिस्टेंट एस.आई. कुरैशी और कंपनी के वाइस प्रेसीडेंट किशोर कामदार आरोपी क़रार दिए जाते हैं, लेकिन कंपनी के चैयरमैन वारेन एंडरसन का इसमें कहीं नाम नहीं था.

अदालत ने सभी मुल्जिमों को धारा 304-ए, 336, 337 और 338 के तहत दोषी ठहराया. आरोपियों को दो-दो साल के कारावास की सज़ा और एक लाख सत्तर हज़ार रुपये जुर्माने का दंड दिया गया. अदालत ने अपने निर्णय में सभी आरोपियों को 25-25 हज़ार रुपये के मुचलके पर ज़मानत भी दे दी. अदालत ने वारेन एंडरसन को इस प्रकरण में प्रस्तुत किए जाने के निर्देश भी दिए. 15274 इंसानी मौतों के लिए ज़िम्मेदार यूनियन कार्बाइड के दोषियों को पच्चीस साल की अवधि गुज़र जाने के बाद दी गई सज़ा कितनी जायज़ है, क्या सीबीआई उपरोक्त प्रकरण की जांच के लिए उतनी गंभीर थी? क्या गैस पीड़ितों को अपने पूरे परिवार को खो देने के बाद मिला न्याय किसी भी रूप से पर्याप्त माना जा सकता है? गैस पीड़ित संगठन के नेता अब्दुल ज़ब्बार का मानना है कि न्याय तो तब माना जाता जब दोषियों को फांसी की सज़ा सुनाई जाती. सरकार ने क़ानून की जिन धाराओं के अंतर्गत प्रकरण प्रस्तुत किया था वही बहुत कमज़ोर थी. गैस पीड़ित सादिया बी के अनुसार अपना सब कुछ खो देने का दर्द कोई नहीं समझ पाता, हमने पच्चीस साल तक जो भोगा है उसके सामने हमें जो न्याय मिला वह तो कुछ भी नहीं है. पीड़ित नसीम ख़ान ने कहा कि इस घटना में वे अपना पूरा परिवार खो चुके हैं. आज भी न्यायालय के बाहर उन्हें दोषियों के लिए फांसी की सज़ा का इंतजार था.

दो और तीन दिसंबर की मध्य रात में भोपाल एक बड़े श्मशान के रूप में परिवर्तित हो गया था. तीन दिसंबर की सुबह प्रशासन को पता लग पाया कि यूनियन काबाईड से निकली गैस ने एक ज़िंदा शहर को मुर्दा बना दिया है. आज भी उस ज़हरीली गैस का वह टैंक मौजूद है जिससे निकली गैस ने इस शहर में मौत परोसी थी. यूनियन कार्बाइड के हादसे को याद करते हुए भोपाल के तत्कालीन कलेक्टर मोती सिंह कहते हैं कि हादसे का सही अंदाज़ दूसरे दिन लग पाया जब शहर में लाशों का ढेर दिखने लगा. तत्कालीन पुलिस अधीक्षक स्वराज पुरी के अनुसार हादसा इतना भयानक था कि बचाव की दिशा में कुछ भी कर पाना असंभव प्रतीत होता था. पुलिस को उन स्थितियों में क़ानून व्यवस्था को संभाल पाना भी बहुत बड़ी चुनौती थी. मोती सिंह के अनुसार शहर का हर हाथ मदद के लिए इस तरह उठ खड़ा हुआ था कि जाति, धर्म संप्रदाय के सारे भेद भाग गए थे. श्मशान में क़ब्र खोदने वाले कमर ख़ान का कहना है कि एक-एक क़ब्र में कितनी लाशें दफ़न की गईं कोई नहीं जानता, लाशों का अंबार लगा हुआ था, ऐसा लगता था कि शहर में ज़मीन कम पड़ जाएगी. विशेषज्ञों के अनुसार यूनियन कार्बाइड से जिस ज़हरीली गैस का रिसाव हुआ था उसे मिट के नाम से जाना जाता है. इस गैस का प्रभाव भोपाल के वायुमडंल पर घटना के 108 दिन बाद तक क़ायम था. वायुमंडल में फैली हुई गैस नमी के साथ धीरे-धीरे ज़मीन पर आ रही थी, पर इस तथ्य से कोई परिचित नहीं था. घटना की रात हुई मौतों का प्रमुख कारण स्थानीय निवासियों का गैस के डर से शहर की सड़कों पर बदहवास भागना और अधिक संख्या में गैस सांस के ज़रिए ग्रहण करना था.

108 दिनों तक भोपाल का वायुमंडल पूरी तरह प्रदूषित था, जिसमें शहर के स्वस्थ व्यक्तियों को भी रिसाव के बाद बड़ी बीमारियों ने ग्रसित कर लिया. गैस पीड़ितों के उपचार और मुआवज़े के नाम पर लंबे समय से राजनीतिक अभियान चलते रहे. इन अभियानों में शहर के मुफ़लिसों को करोड़पति बना दिया. यहां तक कि इस शहर में त्रासदी के बाद मुआवज़े के लिए सक्रिय हुए दलाल गिरोह का अस्तित्व आज भी शासन से लेकर निजी स्थल तक क़ायम है. 1984 में भोपाल नगर निगम की सीमा में गैस पीड़ित वार्डों की संख्या को सीमित रखा गया. सरकार यह मानती है कि गैस का प्रभाव शहर के पूरे वायुमंडल पर नहीं कुछ वार्डों तक सीमित था. शहर में लाखों लोग आज भी गैस त्रासदी की बाद की प्रताड़ना झेल रहे हैं, ऐसी स्थिति में घटना के लिए दोषी ठहराए गए लोगों को एक्सीडेंट की धाराओं में आरोपी बनाना और उनके विरुद्ध सीबीआई जैसी संस्था के माध्यम से एक ग़ैर ज़िम्मेदाराना जांच करना उचित नहीं जान पड़ता. भोपाल मूलत: विश्व में रसायनिक युद्ध की प्रयोगशाला बना था या नहीं, इस प्रश्न पर भी विवाद कायम है. कुछ जानकार 1984 की इस घटना को मानव जीवन पर रासायनिक कुप्रभावों और युद्ध जैसी स्थितियों में इस प्रयोग के सफल या असफल होने की संभावनाओं को परिक्षित करने से जोड़कर देखते हैं. इस संदर्भ में अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर पिछले बीस वर्षों से लंबी बहस लगातार चल रही है. भोपाल गैस त्रासदी के पच्चीस साल बाद गैस पीड़ितों को मिला न्याय सही अर्थों में जायज़ नहीं ठहराया जा सकता. सीबीआई की जांच की सार्थकता पर प्रश्नचिन्ह लगाते हुए गैस पीड़ित संघ के नेता अब्दुल ज़ब्बार का संदेह सही नज़र आता है कि सरकारें इस तरह की मानव त्रासदी को आर्थिक, समाजिक और राजनैतिक लाभ के नज़रिए से तोलती हैं, उन्हें मानवीय संवेदनाओं से कोई लेना-देना नहीं होता.

feedback@chauthiduniya.com

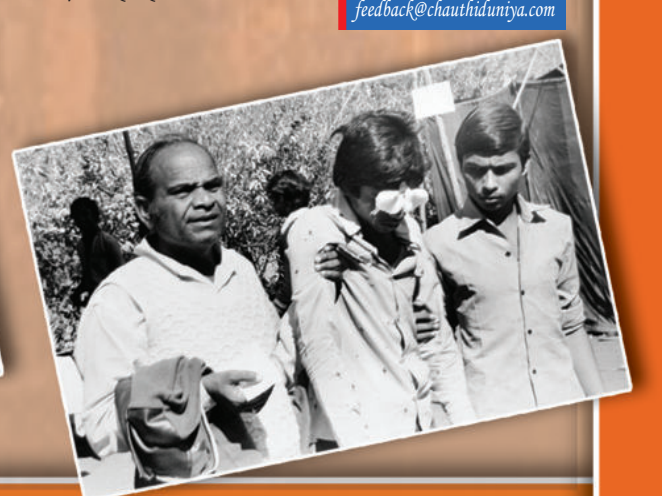

मंदिर और ज़मीन का प्रकरण न्यायालय में विचाराधीन है. यही कारण है कि ज़मीन का उपयोग भी नही हो पा रहा और भगवान जगदीश स्वामी भोग के लिए भी परेशान हैं.

खाली ख़ज़ाने के कारण स्वास्थ्य विभाग के इंदौर, उज्जैन के कर्मचारियों को अप्रैल माह का वेतन नहीं मिला. कुछ छोटे विभागों में तो दो माह से वेतन ही नहीं बंटा है.

सार -संक्षेप

सैकड़ों गांवों में नाइट्राइट का क़हर

सतना ज़िले के 1700 गांव में से 200 गांवों में भूजल में नाइट्राइट के मिलने की पुष्टि हुई है. इस ख़बर के बाद स्थानीय ग्रामीणों के चहरे पर खुशी के भाव मिल रहे हैं, तो दूसरी ओर प्रदूषण विभाग के लिए यह विषय चिंता का कारण बना हुआ है. नाइट्राइट एक प्रकार का सूचक होता है जो यह बताता है कि धरती के सैकड़ों फिट नीचे भूजल तक ऊपर का प्रदूषण पहुंच चुका है. भूगर्भशास्त्रियों के अनुसार नाइट्राइट से बचने के लिए प्रशासन को सीवेज ट्रीटमेन्ट प्लांट स्थापित करने चाहिए और जलप्रदूषण को फैलने से रोकना चाहिए. लोक स्वास्थ्य यांत्रिकी विभाग उन गावों को चिंहित करने की कोशिश कर रहा है जहां नाइट्राइट की उपलब्धता है. इन गावों में समग्र स्वच्छता अभियान के तहत प्रदूषण को रोकने की कोशिश की जायेगी. लोक स्वास्थ्य यांत्रिकी विभाग के कार्यपालन यंत्री आर.वाई तिवारी विभाग को किसी तरह की अधिकृत सूचना मिलने से इंकार कर रहे हैं, परंतु उनका दावा है कि विभाग ऐसी किसी आपदा से निपटने के लिए तैयार है.

क़ानून के बावजूद भिक्षावृत्ति जारी

मध्य प्रदेश नगरपालिका निगम अधिनियम एवं नियम के अंतर्गत धारा 360 में प्रावधान हैं कि भिक्षावृत्ति एक दंडनीय अपराध है. निगम सीमा के भीतर किसी भी सड़क पर सार्वजनिक स्थान पर भीख मांगना या इसके लिए मजबूर करना अपराध है. ऐसा करने पर कारावास और अर्थदंड का प्रावधान है. इसके विपरीत दानपुण्य से जुड़े हुए इस कार्य को कतिपय लोगों ने अब कारोबार बना लिया है. केवल सतना नगर निकाय जहां 21 लाख की आबादी ज़िले के 703 ग्रामपंचायतों और 1659 गांवों में फैली है, में बड़ी संख्या में भिक्षावृत्ति से जुड़े लोगों के समूह कार्यरत हैं. इन लोगों को स्वरोज़गार योजनाओं के तहत अनुदान उपलब्ध कराया गया है. इसके बाद भी इन्होंने भिक्षावृत्ति के व्यवसाय को छोड़ा नहीं है.

एनजीओ का फ़र्ज़ीवाड़ा

मध्य प्रदेश सरकार में संगठित और सुनियोजित लूट का कारोबार चल रहा है. भारी भरकम सरकारी अमले वाले स्कूल शिक्षा विभाग में कोई भी काम करने को तैयार नहीं है, इसलिए बीच में ही पढ़ाई छोड़ने वाले और स्कूलों में प्रवेश न लेने वाले बच्चों के सर्वेक्षण का काम एक एनजीओ को दिया गया. एनजीओ ने क्या काम किया, इसका तो पता नहीं, लेकिन उसे भुगतान बराबर होता रहा. यह किस्सा भोपाल का ही है. प्राप्त जानकारी के अनुसार पिछले वर्ष शिक्षकों और ब्रेड मास्टरों को घर-घर पहुचकर बाल शिक्षा पर सर्वे करने की ज़िम्मेदारी सौंपी गई थी. इस काम में शिक्षक नाकाम रहे, तो 11 एनजीओ को सर्वे कराने का काम दिया गया. इनके लिए बाकायदा दो रुपए प्रति बच्चा सर्वे करने की राशि निर्धारित की गई थी. इनमें अधिकांश एनजीओ ऐसे रहे, जिन्होंने सर्वे किया ही नहीं और पेमेंट के लिए लंबे चौड़े बिल लगा दिए थे. अधिकारी इन बिलों का पेमेंट करते, इसके पहले ही ज़िला पंचायत की तत्कालीन मुख्य कार्यपालन अधिकारी केवी रश्मि ने पेमेंट रोकने की फाइल लगा दी. ज़िला पंचायत से वापस यह फाइल डीपीसी कार्यालय आई, फ़र्ज़ी एनजीओ के नाम को छिपाया जा रहा है. बग़ैर सर्वे के बिलों का भुगतान कराने वाले कौन से एनजीओ हैं, सरकारी कार्यालय यह जानकारी देने से बचना चाहते हैं. जानकारों का कहना है कि स्कूल शिक्षा विभाग में बाबूराज चल रहा है. आला अफ़सरों की काम में ज़्यादा रुचि नहीं है. इसलिए बाबू लोग मनमाने तरीके से काम कर रहे हैं. एक अधिकारी का कहना है कि पिछले वर्ष दस एनजीओ ने सर्वे का काम किया था, लेकिन प्रखर शिक्षा समिति नामक एनजीओ का नाम भर काम करने वालों में शामिल है जिसका पेमेंट रुका है. अन्य के बारे में कोई जानकारी नहीं है.

मंदिर-मठों की भूमि की नीलामी के आसार

मध्य प्रदेश में हिन्दूवादी भाजपा की सरकार में मंदिरों और मठों की भूमि की नीलामी के खतरे को देखते हुए साधु-संत और पुजारी सरकार के ख़िलाफ़ आंदोलन व्यक्त करने लगे हैं. भूमि की नीलामी रोकने बाबत शासन का आदेश 31 मई 2010 को ख़त्म हो गया है, लेकिन अब शासन ने नया आदेश जारी नहीं किया है. पिछले दो वर्षों में मंदिरों-मठों की भूमि की नीलामी रोकने के लिए शासन ने एक-एक वर्ष का अस्थाई आदेश तो जारी किया, लेकिन नीलामी रोकने के लिए कोई स्थाई आदेश जारी नहीं किया. इससे मंहतों और पुजारियों को आशंका है कि शासन कभी भी मंदिरों की ज़मीन नीलाम करा सकता है. संत-पुजारियों का आरोप है कि 37 साल पहले राज्य शासन ने प्रदेश के मठ-मंदिर व सनातन संस्कृति के साथ एक बड़ा धोखा किया, जब 1973 में सरकारी काग़ज़ों में कलेक्टर का नाम बतौर प्रबंधक पुजारी के साथ चढ़ा दिया.

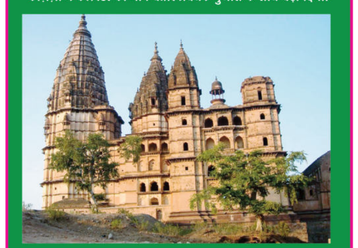

संत पुजारी लंबे अरसे से खसरे के कॉलम-तीन में चढ़ाए जाने की मांग कर रहे हैं, जिससे भूमि की नीलामी की समस्या का समाधान हो सके. अभी प्रशासन क़रीब 12500 मठ मंदिर बता रहा है, जो ग्रामाणिक नहीं हैं. संत पुजारीयों के अनुसार प्रदेश में 40-45 हज़ार मठ-मंदिर हैं. मध्य प्रदेश मठ मंदिर सलाहकार समिति के अध्यक्ष स्वामी मोहनानंद का कहना है कि गत 28 मई को राज्य के धर्मस्व मामलों के मंत्री लक्ष्मीकांत शर्मा को उन्होंने एक पत्र लिखकर सलाह दी थी कि धार्मिक स्थानों की भूमि संतों और पुजारियों के हवाले की जानी चाहिए, लेकिन पत्र पर मंत्रीजी ने कोई कार्यवाही नहीं की. महंत रविंद्रदास का कहना है कि राजधानी भोपाल में ही नवाबी शासनकाल के 12 बड़े मंदिर मठ हैं, जिनके पास काफी भूमि है और यह भूमि नवाबी शासनकाल में ही इन संस्थानों को उपयोग के लिए आवंटित हुई थी, लेकिन कभी भी भोपाल के मुस्लिम शासकों ने हिन्दू धार्मिक स्थलों की भूमि और संपत्ति पर लालची नज़र नहीं रखी. दुख है कि आज भाजपा की सरकार धार्मिक स्थानों की भूमि को नीलामी से बचाने के लिए जागरूक नहीं है.

चौथी दुनिया ब्यूरो
feedback@chauthidunya.com

अन्नपूर्णा योजना का सच

काम कम, प्रचार ज़्यादा

मध्य प्रदेश में गरीब वोट बैंक को अपने हक़ में हड़पने के लिए मुख्यमंत्री शिवराज सिंह चौहान ने तरह-तरह के लुभावने राहतकारी और खैरात बांटने वाले कार्यक्रम शुरू किए हैं, लेकिन इन कार्यक्रमों का प्रचार ज़्यादा होता है, काम कम होता है. प्रचार प्रसार के लिए ही करोड़ों रुपया सरकार अपने ख़ज़ाने से लुटा देती है, लेकिन काम क्या हो रहा है, इस पर ध्यान नहीं देती. राज्य में ग़रीबों को सस्ता गेहूं और चावल देने की अन्नपूर्णा योजना के प्रचार-प्रसार के लिए सरकार ने प्रत्येक ज़िले को दस लाख रुपए का आवंटन किया था. किसी ज़िले में तो यह राशि ख़र्च ही नहीं की गई और कहीं-कहीं आवंटन से ज़्यादा धनराशि ख़र्च कर दी गई. अन्नपूर्णा योजना में घपले-घोटाले और फ़र्ज़ी राशनकार्ड के मामले ज़रूर प्रकाश में आए, लेकिन वास्तविक ग़रीबों को इस योजना का उतना लाभ नहीं मिला, जितना कि इसका प्रचार किया गया था.

प्राप्त जानकारी के अनुसार इंदौर, ग्वालियर, जबलपुर, राजगढ़, शाजापुर जैसे ज़िलों में तो आवंटन से ज़्यादा राशि ख़र्च कर दी, जबकि उज्जैन, मंदसौर, खरगोन, धार, खंडवा, छिन्दवाड़ा में आधी राशि भी ख़र्च न हो सकी. यही नहीं प्रचार करने वाली फर्मों के अस्तित्व भी संदिग्ध में हैं. राज्य में ग़रीबों को सस्ता गेहूं और चावल देने के लिए 1 अप्रैल 2008 से शुरू की गई मुख्यमंत्री अन्नपूर्णा योजना के प्रचार के आधार दर्जन से ज़्यादा ज़िलों में मनमर्ज़ी से ख़र्च कर दिया गया. अब संबंधित फर्मों को भुगतान किए जाने के भी लाले पड़ रहे हैं. इस महत्वपूर्ण योजना का ग़रीबों को समुचित लाभ मिल सके, इसके लिए सरकार ने प्रत्येक ज़िले को व्यापक प्रचार-प्रसार के आधार पर दर्जन से ज़्यादा ज़िलों में मनमर्ज़ी से ख़र्च कर दिया गया. अब संबंधित फर्मों को भुगतान करना मुश्किल हो रहा है. इस महत्वपूर्ण योजना का ग़रीबों को समुचित लाभ मिल सके, इसके लिए सरकार ने प्रत्येक ज़िले को व्यापक प्रचार-प्रसार के लिए 10 लाख रुपए आवंटित किए थे.

मुख्यमंत्री अन्नपूर्णा योजना के तहत कार्यक्रमों का भुगतान करने की ज़िम्मेदारी ज़िलों को दी गई. हालात यह हैं कि आधा दर्जन से ज़्यादा राशि इस योजना के प्रचार-प्रसार पर ख़र्च कर दी, मगर अब काम करने वाली फर्मों को भुगतान नहीं हो पा रहा है. इधर राज्य सरकार ने ऐसे ज़िलों से संबंधित फर्मों के नाम पते और उनका ज़रूरी ब्यौरा तलब किया है. सीहोर ज़िले में भी इस कार्य के लिए 10 लाख रुपए का आवंटन किया गया था, मगर 18 लाख 2 हज़ार 52 रुपए ख़र्च कर देने पर अब कलेक्टर अतिरिक्त राशि 8 लाख 2 हज़ार 52 रुपए मांग रहे हैं. राज्य के जिन ज़िलों में आवंटन से ज़्यादा राशि ख़र्च की गई उनमें ग्वालियर में 18 लाख 700 रुपए, इंदौर में 18 लाख 77 हज़ार 655 रुपए, जबलपुर में 16 लाख 40 हज़ार रुपए, मुरैना में 15 लाख 8 हज़ार 739 रुपए, पन्ना में 13 लाख रुपए, राजगढ़ में 16 लाख 97 हज़ार 946 रुपए, सीहोर में 18 लाख 2 हज़ार 52 रुपए, रायसेन में 12 लाख रुपए, कटनी में 10 लाख 95 हज़ार 62 रुपए और शाजापुर में 11 लाख 5 हज़ार 885 रुपए की राशि ख़र्च कर दी गई.

चौथी दुनिया ब्यूरो
feedback@chauthidunya.com

अपनी ही खनिज संपदा से

बेख़बर है सरकार

प्रदेश सरकार अपनी अमूल्य खनिज संपदा से इतनी बेख़बर है कि उसके पास जानकारी ही नहीं है कि राज्य के किस क्षेत्र में कहां और कितना खनिज भूगर्भ में मौजूद है, लेकिन राज्य का खनिज माफिया सरकार से ज़्यादा बाख़बर और जागरूक है. इसीलिए उसे मालूम है कि किस क्षेत्र से किस खनिज की कितनी चोरी आसानी से की जा सकती है. यही कारण है कि राज्य में प्रतिदिन लाखों रुपयों का खनिज चोरी होता है और सरकार तमाशा देखती रहती है.

राजधानी के पड़ोसी ज़िले रायसेन के वनक्षेत्रों में भारी मात्रा में ग्रेनाइट पत्थर मौजूद हैं, लेकिन राज्य के खनिज विभाग के नक्शे में इस ग्रेनाइट खनिज के बारे में कोई जानकारी नहीं दी गई है. वनों के संरक्षण के नाम पर खनिज विभाग भी इन वनक्षेत्रों में खनिज संपदा का सर्वे नहीं करता है. सरकार के इस कमज़ोरी का लाभ खनिज माफिया उठा रहा है और वन विभाग के कर्मचारी और अफसर जानबूझकर खनिज चोरी को बढ़ावा दे रहे हैं. इस खनिज चोरी से जहां खनिज माफिया को करोड़ों रुपयों की आमदनी होती है, वहीं सरकार को करोड़ों रुपयों के खनिज राजस्व की क्षति हो रही है. रायसेन के वनों से भारी मात्रा में ग्रेनाइट पत्थर की खुदाई होती है और चोरी छिपे इस पत्थर का दूसरे ज़िलों और राज्य से बाहर परिवहन भी होता है.

भोपाल से लगभग 80 किलोमीटर दूर रायसेन ज़िले के बेगमगंज में सागौनी गुसाई वनक्षेत्र में धाज जंगल है, जो जमुनिया गोडाखोह की ओर जाता है इस जंगल में दो स्थानों पर जेसीबी मशीनों से 300 मीटर गोलाई के दो बड़े गड्ढे खोदकर ग्रेनाइट पत्थर निकाला गया है और अब गड्ढों के नीचे भी गहराई में कीमती ग्रेनाइट पत्थर की खुदाई चल रही है, लेकिन इसका किसी का पता न चल सके, इसलिए गड्ढों में पानी भर दिया जाता है और जब खुदाई करनी होती है, तब मोटर पम्प से पानी निकाल दिया जाता है और खुदाई करने के बाद फिर पानी भर दिया जाता है. ग्रेनाइट खुदाई के तार भोपाल से जुड़े हुए हैं और खनिज माफिया को नौकरशाही और राजनेताओं का भी संरक्षण प्राप्त है. बताते हैं कि ग्रेनाइट पत्थर का कारोबार करने वाली एक बड़ी कंपनी इस काम को करवा रही है. जबकि एक अन्य कंपनी ग्रेनाइट पत्थर का सर्वे करा चुकी थी और उसे निराशा हाथ लगी थी. सूत्रों के मुताबिक़ सरकारी अफसरों ने ही इस कंपनी को सर्वेक्षण में सहयोग नहीं दिया.

ग्रेनाइट की अवैध खुदाई के साथ-साथ इस क्षेत्र में वनों की भी अवैध कटाई हो रही है. विशेषकर सागौन जैसे क़ीमती वृक्षों की धड़ल्ले से कटाई हो रही है, लेकिन ज़िला प्रशासन और वन विभाग को इस बारे में कोई जानकारी नहीं है. वैसे भी वन संरक्षण क़ानून और पर्यावरण क़ानून के कारण वनक्षेत्र में खनिजों की खुदाई पर प्रतिबंध लगा हुआ है, लेकिन यहां तो बाक़ायदा ग्रेनाइट की खुदाई जेसीबी मशीनों के ज़रिए की जा रही है और आश्चर्य की बात ता यह है कि वनों में चप्पे-चप्पे की रखवाली करने वाले वनकर्मी और उनके बड़े अफसर इस अवैध खनिज कारोबार के बारे में कोई जानकारी ही नहीं रखते हैं. इलाके के पटवारी, राजस्व निरीक्षक और रेंजर को भी इस बारे में कुछ भी नहीं मालूम है, लेकिन जानकारों का कहना है कि खनिज माफिया की करतूतों के बारे में सभी जानते हैं, लेकिन भय और प्रलोभन के कारण मुंह बंद रखते हैं.

चौथी दुनिया ब्यूरो
feedback@chauthidunya.com

> ग्रेनाइट की अवैध खुदाई के साथ-साथ इस क्षेत्र में वनों की भी अवैध कटाई हो रही है. विशेषकर सागौन जैसे क़ीमती वृक्षों की धड़ल्ले से कटाई हो रही है. पर ज़िला प्रशासन और वन विभाग को इस बारे में कोई जानकारी नहीं है. वैसे भी वन संरक्षण क़ानून और पर्यावरण क़ानून के कारण वनक्षेत्र में खनिजों की खुदाई पर प्रतिबंध लगा हुआ है, लेकिन यहां तो बाक़ायदा ग्रेनाइट की खुदाई जेसीबी मशीनों के ज़रिए की जा रही है और आश्चर्य की बात तो यह है कि वनों में चप्पे-चप्पे की रखवाली करने वाले वनकर्मी और उनके बड़े अफसर इस अवैध खनिज कारोबार के बारे में कोई जानकारी ही नहीं रखते हैं.

भोग को तरसते भगवान

कलयुग के इस चरण में न्याय व्यवस्था और भक्तों की उपेक्षा ने भगवान को भी दाने-दाने पर मोहताज कर दिया है. कभी जिस मंदिर के दरवाजे पर चंदन की लकड़िया शृंशोभित थीं, जहां भक्तों का तांता लगा रहता था उसी दरबार में भगवान भोग के लिए तरस रहे हैं. उनके मंदिर और मंदिर का पालन करने के लिए निर्धारित जमीन सरकारी दांवपेंच में उलझकर न्यायालय में निर्णय की प्रतीक्षा कर रही है, ऐसे में भोग लगाए तो कौन?

नोगांव जिले की गरोंली रियासत में भगवान जगदीश स्वामी का पुरातन मंदिर है. पिछले कई दशकों से इस मंदिर की महिमा का बखान स्थानीय लोग करते रहे हैं. इस मंदिर को रियासत के महाराज दीवान बहादुर सिंह ने बनवाया था इस मंदिर में भगवान जगदीश स्वामी की मूर्ति की स्थापना की गई थी. मंदिर के रखरखाव एवं प्रतिदिन भोग के लिए गरोंली एवं पुतरियां गांव में सात बीघा जमीन मंदिर के नाम पर रखी गई थी. सात दिनों तक भोग के लिए इस जमीन का उत्पादन पर्याप्त माना गया था.स्वतंत्रता के बाद रियासत के अंतिम महाराज रघुराज सिंह जूदेव ने मंदिर व उसकी जमीन विंध्य प्रदेश राज्य को सौंप दी जो कालांतर में मध्य प्रदेश गठन के समय इस राज्य की संपत्ति मान ली गई. नए राज्य के गठन के पश्चात् जिला कलेक्टर को मंदिर का प्रबंधक और राम दयाल मिश्रा को मंदिर का पुजारी नियुक्त किया गया. समय गुजरने के साथ-साथ बलराम दास नामक व्यक्ति ने स्वयं मंदिर का प्रबंधन और पुजारी का पद प्राप्त कर लिया. जमीन को हड़पने की साजिश को आगे बढ़ता देखकर रियासत के पूर्व महाराज दीवान रवींद्र सिंह जूदेव ने न्यायालय की शरण ली.

तब से ही मंदिर और जमीन का प्रकरण न्यायालय में विचाराधीन है. यही कारण है कि जमीन का उपयोग भी नही हो पा रहा और भगवान जगदीश स्वामी आज भोग के लिए भी परेशान हैं. पांच वर्ष पहले मंदिर की प्राचीन दीवारें ढह जाने के कारण चंदन से निर्मित बेशकीमती मूर्तियों को एक छोटे कमरे में स्थानांतरित कर दिया गया है, जो भगवान की विशाल मंदिर में विराजते थे आज उन्हें एक छोटे कमरे में बिना भोग के गुजर बसर करनी पड़ रही है. संभवत: भगवान को भी इंतजार होगा कि न्यायालय में कभी उनकी फरियाद भी सुनी जाएगी.

feedback@chauthidunya.com

विनय दीक्षित

बचपन में हमने दधोरशंख की कहानी सुनी है. दधोरशंख वायदे तो बढ़चढ़कर करता, लेकिन उन्हें कभी पूरा नहीं करता. इस कहानी को हमारी मध्य प्रदेश सरकार अपनी रीति-नीति से साकार कर रही है. राज्य की जनता से स्वर्णिम मध्यप्रदेश बनाने का वायदा करने वाली सरकार अपनी खस्ता आर्थिक स्थिति और खाली ख़ज़ाने को ज़्यादा दिनों तक छिपा नहीं सकती है, यह जानते हुए भी सरकार के नेता जनता से विकास और कल्याण के अनेक लोक लुभावन वायदे कर रहे हैं, लेकिन सरकारी वित्त विभाग चीख-चीखकर चिल्ला रहा है कि ख़ज़ाना खाली है और हालत इतनी बुरी है कि सरकार के पास अपने कर्मचारियों को समय पर वेतन देने के लिए भी पैसा नहीं है.

वित्त वर्ष 2010-11 का बजट पारित हुए अभी दो माह ही बीते हैं, लेकिन तीसरे माह के शुरू होते ही ज़िलों के कोषागारों (ख़ज़ाने) में धन की इतनी कमी आ गई है कि कर्मचारियों के वेतन बिलों का भी भुगतान नहीं हो रहा है. यह अफ़वाह या झूठा प्रचार नहीं है. सरकार भी स्थिति को जानती और समझती है इसलिए एक जून को सरकार के आयुक्त, कोष एवं लेखा विभाग की ओर से एक सरकारी विज्ञप्ति जारी करते हुए स्थिति स्पष्ट की गई है कि शासन के कर्मचारियों को वेतन भुगतान में बजट की कमी आड़े नहीं आएगी. विज्ञप्ति में बताया गया है कि आयोजनोत्तर मद में वित्तीय वर्ष के लिए विभागों को वांछित पूरी राशि का आवंटन किया जा चुका है, लेकिन आयोजना मद में कुल बजट प्रावधान के अनुसार वर्तमान में त्रैमासिक बजट का ही आवंटन किया गया है. सही स्थिति जो भी हो, लेकिन ज़मीनी हक़ीक़त यही है कि दूरदराज के इलाक़ों में पदस्थ सरकारी कर्मचारियों को कहीं एक माह का तो कहीं दो माह से वेतन नहीं मिला है. मई माह का वेतन तो अभी तक कई विभागों में ज़िला मुख्यालयों में भी नहीं बंटा है. इसके अलावा जिन कर्मचारियों को वेतन मिला है, उन्हें छठवें वेतनमान के हिसाब से भुगतान नहीं किया गया है.

मध्य प्रदेश तृतीय वर्ग शासकीय कर्मचारी संघ के महामंत्री ओपी कटियार का कहना हैं कि अफसरों की लापरवाही के कारण कर्मचारियों को नुकसान उठाना पड़ रहा है. एक ओर तो अफसरों को दस लाख रुपए एरियर्स का भुगतान हो गया है, तो दूसरी ओर छोटे कर्मचारियों को नियमित वेतन तक नहीं मिल रहा है.

वित्त मंत्री राघवजी भी मानते हैं कि वित्तीय आकलन करने में विभागों ने चूक की होगी, क्योंकि आकलन के बाद जो भी विभाग जितना बजट मांगता है, वित्त विभाग उसे उतना आवंटन कर देता है. सभी विभागों का बजट तय है और विभाग अपने बजट की राशि इकट्ठा भी ले सकते हैं, लेकिन निर्धारित बजट से ज़्यादा उन्हें नहीं दिया जा सकता है.

दूसरी ओर कांग्रेस प्रवक्ता अरविंद मालवीय का कहना है कि कर्मचारियों के छठे वेतनमान के निर्धारण, भुगतान और एरियर्स के भुगतान को लेकर जानबूझकर विसंगतियां निर्मित की गई हैं. इस कारण वेतन कर हिसाब-किताब सही नहीं बन पाया है. इसके अलावा सरकार में फ़िज़ूलख़र्ची भी बहुत ज़्यादा है और मुख्यमंत्री ने अपनी लोकप्रियता बनाने के लिए रियायती और खैराती कार्यक्रमों पर जिस प्रकार से अनाप-शनाप ख़र्च किया हैं, उससे बजट अनुशासन भंग हो गया है और यही कारण है कि ख़ज़ाने में धन की कमी है.

अरविंद मालवीय के अनुसार वित्त वर्ष के आरंभ के तीन माह में सरकार की कर वसूली बहुत धीमी होती है और करेत्तर राजस्व भी बहुत कम मिल पाता है, इस कारण खजाने में पैसे की कमी बनी रहती है, लेकिन सरकार ने आय की तुलना में इन दो महिनों में ज़रूरत से ज़्यादा ख़र्च किया है, इसलिए कर्मचारियों को वेतन देने में दिक्कत आ रही है. सरकारी वित्त व्यवस्था के जानकारों का कहना है कि सभी सरकार विभागों को किस्तों में मिल रहे बजट के चलते राज्य सरकार के 50 प्रतिशत कर्मचारियों को वेतन के लाले पड़ गए हैं. दूसरी ओर जनगणना में कर्मचारियों की तैनाती ने मई में मिलने वाले छठवें वेतनमान के एरियर्स की पहली किस्त में भी उन्हें दूर कर दिया है.

छोटे विभागों के कर्मचारियों को दो महीने से तो पीडब्ल्यूडी, स्वास्थ्य और शिक्षा जैसे बड़े विभागों में कई ज़िलों में चालू माह का वेतन नहीं मिल सका है. हर तीन माह में बजट देने के पीछे सरकार की मंशा थी कि विभाग अनाप-शनाप ख़र्च नहीं कर पाएंगें. इससे वर्षांत तक विभागों के पास पर्याप्त राशि मुहैया हो सकेगी. वेतन न मिलने का मुख्य कारण वेतनमान का निर्धारण और बजट आकलन में हुई चूक है. कर्मचारियों की छठवां वेतनमान देने की घोषणा होते ही विभागों ने बिल बनाए, लेकिन ट्रेजरी ने यह आपत्ति लगाकर बिल वापस कर दिए कि संबंधित विभाग के खाते में वांछित राशि ही नहीं है. वित्त विभाग ने पांचवे वेतनमान के हिसाब से ही बजट आवंटित कर दिया, जिससे बिल अधिक राशि के हो गए. प्राप्त जानकारी के अनुसार खाली ख़ज़ाने के कारण स्वास्थ्य विभाग के इंदौर, उज्जैन के कर्मचारियों को अप्रैल माह का वेतन नहीं मिला है. कुछ छोटे विभागों में तो दो माह से वेतन नहीं बंटा है. राज्य सरकार ने कर्मचारियों की हड़ताल टालने के लिए छठे वेतनमान की शेष राशि का पांच किस्तों में भुगतान करने का समझौता कर्मचारी संगठनों से किया था, लेकिन अभी तक पहली किस्त का भी भुगतान नहीं हुआ है. पता चला है कि बकाया वेतन के एरियर्स के बिल ही नहीं बनाए गए है और जो बिल बनाए गए हैं, वे इतने दोषपूर्ण हैं कि ट्रेजरी से ख़ारिज कर दिए गए हैं. राज्य सचिवालय और पुलिस विभाग के कर्मचारी सौभाग्यशाली हैं, जिन्हें समय पर वेतन भी मिल रहा हैं और एरियर्स की किस्त भी मिली है. राज्य स्वास्थ्य कर्मचारी संघ के महामंत्री लक्ष्मीनारायण शर्मा का कहना है कि बजट आवंटन तिमाही किए जाने के बाद आकलन में चूक से कई ज़िलों में वेतन नहीं बंट पाया हैं, तो वहीं जनगणना के कारण एरियर्स भी अटक गया. वहीं अधिकारी-कर्मचारी महासंघ के महामंत्री उदयनारायण त्रिपाठी ने बताया कि वेतन में देरी के अलावा मई माह में एरियर्स मिलने की घोषणा की गई थी, लेकिन पहली ही किश्त के भुगतान में देरी से सरकार की साख पर बट्टा लगा है.

feedback@chauthidunya.com

राघव जी

लक्ष्मीकांत शर्मा

खाली ख़ज़ाने से स्वर्णिम प्रदेश !

किसानों को भुगतान नहीं

सरकार ने इस वर्ष गेहूं की सरकारी ख़रीद का व्यापक अभियान चलाया और 35 लाख मीट्रिक टन से ज़्यादा गेहूं ख़रीदा है. सरकार ने 1100 रुपए प्रति क्विंटल समर्थन मूल्य पर 100 रुपया बोनस देने की भी घोषणा की, लेकिन कुछ दिनों तक तो हालत ठीक रही और किसानों को गेहूं बेचने के लिए मंडियों की ओर आकर्षित करने के लिए उन्हें तुरत-फुरत भुगतान दिया गया, लेकिन एक सप्ताह बाद ही दूर-दराज की मंडियों में किसानों को चेक द्वारा भुगतान इस तरह से किया जाने लगा कि उन्हें दो-तीन सप्ताह तक नकद पैसा न मिल सके. बाद में तो हालत और भी बुरी हो गई. एक सरकारी अनुमान के अनुसार अभी भी किसानों से ख़रीदे गए गेहूं का लगभग 166 करोड़ रुपया बकाया है और लगभग 125 करोड़ रुपयों के चेक अभी भुगतान हेतु लंबित हैं. किसानों के बकाया भुगतान का कारण यह बताया जाता है कि सरकार की ओर से राज्य नागरिक आपूर्ति निगम और सहकारी विपणन संघ को गेहूं ख़रीदी के लिए जितनी मात्रा में अतिरिक्त पैसा दिया जाना था, उसका भुगतान नहीं किया गया. इस कारण इन संस्थाओं को किसानों को भुगतान देने में दिक्कत आ रही है.

स्थानांतरण पर करोड़ों रुपये बर्बाद

एक ओर तो सरकार के पास अपने कर्मचारियों को वेतन देने के लिए पैसा नहीं है, तो दूसरी ओर स्थापना व्यय बढ़ाने के लिए सरकार बड़े पैमाने पर अधिकारियों और कर्मचारियों के स्थानांतरण कर रही हैं. स्थानांतरण करने से ख़र्च और भी बढ़ गया है और स्थानांतरण संबंधी ख़र्च के ब्यौरों का भुगतान कर्मचारी को एक माह के भीतर ही करना होता है, इसलिए सरकारी ख़ज़ाने पर बोझ और भी बढ़ रहा है, लेकिन इसकी चिन्ता राजनेताओं को नहीं है, क्योंकि उन्हें अपने चहेतों को उपकृत करना है और अपने विरोधियों को स्थानांतरण के ज़रिए सज़ा भी देना है. मध्य प्रदेश सरकार की आमदनी और ख़र्च का सूक्ष्म परीक्षण करने से साफ़ पता चलता है कि राज्य सरकार अपनी कमाई का एक चौथाई भाग ही आयोजना मद अर्थात् विकास और लोककल्याण की नई परियोजनाओं पर ख़र्च करती है. जबकि तीन चौथाई ख़र्च ग़ैर योजना मद अर्थात सरकार के संचालनव्यय और अन्य मदों में ख़र्च होते हैं. वर्ष 2008-09 में राज्य सरकार का आयोजना राजस्व व्यय 8462.77 करोड़ था जिसमें पूंजीगत व्यय 6442.01 करोड़ रुपये था, जबकि आयोजनेत्तर व्यय 23316.17 करोड़ रुपये था. आयोजनेत्तर व्यय में लगभग 12 हज़ार करोड़ रुपये कर्मचारियों, अधिकारियों के वेतन भत्ते और सेवानिवृत्त हो चुके सरकारी कर्मियों की पेंशन भुगतान में ख़र्च होते हैं. लगभग छह हज़ार करोड़ रुपया कर्ज़ पर ब्याज चुकाने में ख़र्च हो जाते हैं और शेष पांच हज़ार करोड़ रुपये से ज़्यादा धन स्थापना व्यय, राहत, अनुदान, आपदा प्रबंधन और अन्य आकस्मिक व्यव के मदों में ख़र्च होते हैं. जहां तक राज्य सरकार की आमदनी का सवाल है वर्ष 2008-09 के बजट के अनुसार राजकीय करों से 14001.68 करोड़ रुपयों की आमदनी हुई, जबकि करेत्तर राजस्व से केवल 1991.30 करोड़ रुपए की आय हुई. इस प्रकार राज्य सरकार की अपनी कुल आय 15992.98 करोड़ रुपये रही, जबकि सरकार का कुल ख़र्च 38220.95 करोड़ रुपया था. इससे स्पष्ट है राज्य सरकार की कर राजस्व आय का 80 प्रतिशत से ज़्यादा हिस्सा तो केवल सरकारी अमले के वेतनभत्तों और पेंशन पर ख़र्च हो जाता है और बाकी बचे धन में करेतर राजस्व आय को भी यदि शामिल किया जाए, तो सरकार के पास क़र्ज़ की किस्त और ब्याज चुकाने का भी पैसा नहीं बच पाता है. कुल मिलाकर मध्य प्रदेश की अर्थव्यवस्था को भारत सरकार से मिलने वाली धनराशि का ही सहारा होता है. भारत सरकार से मध्य प्रदेश सरकार को उसकी कुल आय से कहीं ज़्यादा धन मिलता है. वर्ष 2008-09 में केंद्रीय करों के हस्तांतरण से 10765.03 करोड़ रुपया तथा केंद्रीय अनुदान से 7036.17 करोड़ रुपया मध्य प्रदेश को मिला. इसके अलावा केंद्र प्रवर्तित विकास योजनाओं और जनकल्याण के कार्यक्रमों के लिए केंद्र से अलग से सहायता भी मिलती है और अंतर्राष्ट्रीय संस्थाओं से भी मध्य प्रदेश को सहायता उपलब्ध कराने में केंद्र पहल करता है. राज्य सरकार इसके बाद भी हर साल सार्वजनिक वित्तीय संस्थाओं, भारत सरकार और बाज़ार से करोड़ों रुपयों का ऋण लेती है. पिछले वर्ष सरकार को तीन बार ऋण लेना पड़ा है. कुल मिलाकर राज्य सरकार पर लगभग 55 हज़ार करोड़ रुपयों का सकल ऋण बोझ लदा हुआ है. केंद्र की सहायता और ऋण पर आधारित वित्त व्यवस्था का प्रबंधन भी भली प्रकार सरकार नहीं कर पाती है, इसी कारण जब-तब सरकारी ख़ज़ाना खाली हो जाता है और सरकार को अपने कर्मचारियों को वेतन देना भी मुश्किल हो जाता है, जैसा कि इस बार हुआ है.

Postal Regn. No. DL/ND-11/6139/2009-11, RNI No. 45843/86

चौथी दुनिया

दिल्ली, 21 जून–27 जून 2010

मल्लखंब सागवान या कालिये की लकड़ी से बना होता है जो ज़मीन में क़रीब 90 सेंटीमीटर तक गड़ा होता है.

बांस न मिलने से रोटी को तरसे बसोड़

वनों से निकलने वाले बांस बड़ी मात्रा में बांस फैक्ट्रियों को भेजे जाते हैं. वन विभाग रसूखदार और अमीर उपभोक्ताओं का ध्यान पहले रखता है. इस कारण बसोड़ों के लिए पर्याप्त संख्या में बांस बच ही नहीं पाते. वन विभाग द्वारा प्रतिदिन बिक्री किए जाने वाले बांस व्यापार के आंकड़ों पर नज़र डाली जाए तो पता चलता है कि यहां से प्रतिदिन सैकड़ों टन बांस फैक्ट्रियों के लिए निर्यात किए जाते हैं.

मध्य प्रदेश के वन विभाग की अदूरदर्शिता के कारण राज्य के लाखों बसोड़ या वंसकार (बांस का सामान बनाने वाले) बेरोज़गारी की पीड़ा झेल रहे हैं. राज्य सरकार बांस व्यापार को बढ़ावा देने और वन विभाग की राजस्व आय बढ़ाने के लिए बांस का निर्यात कर रही है और बांस का सामान बनाने वाले कारखानों को बड़ी मात्रा में बांस बेच रही है, लेकिन राज्य के ग़रीब और छोटे दस्तकारों, कुटीर उद्योगों और घरेलू उद्योगों को पर्याप्त मात्रा में बांस की आपूर्ति नहीं की जा रही है, इस कारण बसोड़ परिवार बेरोज़गार हो रहे हैं.

सदियों से बांस पर निर्भर रहने वाले इन बांस कारीगरों की आजीविका का जरिया बांस की टोकरी, झाड़, चटाई, छत, टट्टे, सजावटी सामान और खिलौने बनाना ही है. आज भी हज़ारों की संख्या में बसोड़ परिवार अपने इसी परंपरागत व्यवसाय और कला कौशल से जुड़े हुए हैं. राजशाही के दौर में और यहां तक कि ब्रिटिश शासनकाल में भी इन बसोड़ों को वनों से अपनी ज़रूरत के लिए बांस काटने की अनुमति प्राप्त थी. आज़ादी के कुछ वर्षों बाद सरकार ने बांस व्यापार का राष्ट्रीयकरण कर लिया और वनों में पैदा होने वाले बांस पर सरकार का एकाधिकार हो गया, लेकिन सरकार ने बसोड़ों के हित में इतना ज़रूर किया कि उन्हें वन विभाग से न्यूनतम मूल्य पर ज़रूरत के लिए बांस मिल जाते थे. बाद में काग़ज़ मिलों के लिए छोटे बांस के उत्पादन पर वन विभाग ने ज़ोर दिया तो बड़े बांसों का उत्पादन कम होने लगा. बांस की जड़ों से वंशलोचन नाम का आयुर्वेद की औषधी महत्व का पदार्थ निकलता है, इसलिए बड़े बांसों का वंसलोचन के लिए संरक्षण किया जाने लगा. नतीजा यह हुआ कि बसोड़ों को उनकी ज़रूरत के अनुसार बांस मिलना बंद हो गया. सरकार ने बसोड़ों के हित में बांस डिपो से बांस बेचने की नीति तो लागू की, लेकिन वन विभाग के छोटे कर्मचारियों का कहना है कि जब बांस डिपो में ही बांस नहीं रहेंगे तो बसोड़ों को हम कैसे और कहां से बांस बेच सकेंगे. यह एक हक़ीक़त हैं, क्योंकि वनों से निकलने वाले बांस बड़ी मात्रा में बांस फैक्ट्रियों को भेजे जाते हैं. वन विभाग अपने बड़े और अमीर उपभोक्ता का ध्यान पहले रखता हैं. इस कारण बसोड़ों के लिए पर्याप्त संख्या में बांस बच ही नहीं पाते हैं.

वन विभाग द्वारा प्रतिदिन बिक्री किये जाने वाले बांस व्यापार के आंकड़ों पर नजर डाली जाए तो पता चलता है कि यहां से प्रतिदिन सैकड़ों टन बांस फैक्ट्रियों के लिए निर्यात किया जाता हैं. वहीं दूसरी तरफ परंपरागत रूप से बांस के बर्तन व अन्य सामग्री बनाकर जीवन–यापन करने वाले बसोड़ परिवारों को बांस नहीं मिलने के कारण उनके सामने रोजी–रोटी का संकट बढ़ता जा रहा है. सोचनीय पहलू यह है कि गृह उद्योग व बांसशिल्प कला को लेकर सरकारी व गैर सरकारी प्रयास तो किये जा रहे हैं लेकिन इसके लिए बांस के रूप में कच्चे माल की उपलब्धता को लेकर कोई ज़मीनी योजना दिखाई नहीं पड़ती. यह लंबे समय से जटिल बने हुए वन क़ानूनों और वनाधिकारियों की अदूरदर्शिता का ही नतीजा है कि बांस वनों पर निर्भर रहने वाला वर्ग विशेष जहां पहले स्वयं बांस की कटाई–छटाई कर उसका सुधार और संरक्षण करते हुए अपनी रोज़ी रोटी चलाता था वहीं अब प्रदेश में बांस के बिगड़े वनों के सुधार के नाम पर करोड़ों रुपये ख़र्च किए जा रहे हैं.

ज्ञात हो कि मध्य प्रदेश के सीधी, उमरिया, बैतूल व छिंदवाड़ा जैसे ज़िलों में बांस के वन लगातार बिगड़ते जा रहे हैं जिसके कारण भूमिक्षरण परियोजना तथा बिगड़े बांस वनों के सुधार के कार्यक्रम चलाये जा रहे हैं. प्रदेश में वन विकास एवं प्रबंधन में स्थानीय लोगों के भागीदारी की बात तो की जा रही है, लेकिन संयुक्त वन प्रबंधन समितियों में ही देखा जाए तो बसोड़ समुदाय का प्रतिनिधित्व न के बराबर हैं. ऐसे में वन एवं वनोत्पादों से संबंधित धंधों से जुड़े समुदायों के सवालों को सुलझाए बिना इसका औचित्य एकतरफा जान पड़ता है.

ग़ौरतलब हैं कि अनुसूचित जाति के अंतर्गत आने वाले वंसकारों की आजीविका पूर्णत: बांस पर निर्भर रही है, इसलिए उनके पास कृषि भूमि न के बराबर है और अब कच्चे माल की बढ़ रही दरों और उसकी अनुपलब्धता को देखते हुए वंसकारों के सामने पारंपरिक धंधा बंदकर रोज़गार की तलाश में पलायन की स्थिति बन रही है. आजीविका संकट से जूझने वालों में उमरिया नगर के खलेसर में रह रहे बसोड़ समुदाय के परिवार भी है जो पुश्तों से बांस के बर्तन बना और बेचकर अपनी आजीविका चलाते हैं. इनमें से एक मुन्ना बसोड़ का कहना है कि शायद अब हमें कोई और धंधा करना होगा. अपने इलाज के लिए आर्थिक सहायता की गुहार लगाता मुन्ना बताता है कि अधिकांशत: बांस से बनने वाली सामग्रियों में देशी जंगली और हरे बांस की ज़रूरत होती है जो कि बड़ी मुश्किल से 30 से 10 रुपये प्रति गन की दर से मिलता है. मुन्ना की तरह ही यहां रहने वाले दूसरे वंसकारों को भी बांस के लिए, ग्रामीण क्षेत्रों में भटकना पड़ता है. बांस खोजने, उसे लाने, उसकी छिपाई, बिनाई और रंगाई करने से लेकर हाट–बाज़ार में प्लास्टिक व लोहे की बढ़ती मांग के बावजूद बेच पाने में वंसकारों को काफी मशक्कत करनी पड़ती है. इतना सब करने के बावजूद यदि बांस से होने वाली कमाई देखी जाए तो वह महज 30 रुपये रोजी से अधिक नहीं होती.

कटाई के बावजूद बांस की पहुंच वन विकास निगम के डिपो तक नहीं होती है जिससे वंसकारों के लिए कच्चा माल नहीं मिल पाता है. वहीं परिवहन और लोडिंग अनलोडिंग में होने वाले ख़र्चों को देखते हुए हरे बांस के भण्डारण की व्यवस्था बांस वनों के नजदीक ही कर दी जाती है और वहां से उसे सूख जाने के बाद ही बिक्री के लिये लाया जाता है. सच तो यह है कि सूखे बांस का व्यापार वन विकास निगम और सरकार के लिए मुनाफे का सौदा है, लेकिन हरे बांस की बढ़ती अनुपलब्धता और वंसकारों की आजीविका पर लगातार बढ़ते संकट से सरकार को कोई सरोकार है?

चौथी दुनिया ब्यूरो
feedback@chauthiduniya.com

महाकाल की नगरी में मल्लखंब

मध्य प्रदेश की सांस्कृतिक नगरी, जहां भूतभावन महाकाल विराजे हैं, मल्लखंब कला प्रदर्शन को लेकर चर्चाओं में है. सोनी और कलर्स चैनल पर होने वाले टैलेंट शो के अंतर्गत यहां के खिलाड़ियों ने विश्व भर में इस खेल को नए आयाम दिए हैं. इसके चलते अब उज्जैन में मल्लखंब खेल अकादमी की स्थापना का निर्णय भी राज्य शासन ले चुका है. आज यह खेल कौशल किसी भी खेल की बुनियादी आवश्यकता के रूप में जगह बनाने लगा है. मल्लखंब खेल से शरीर इतना लचीला हो जाता है कि खिलाड़ी किसी भी खेल में स्वयं को दक्ष पाता है. मल्लखंब को संरक्षित करके प्रशासन ने सदियों पुरानी इस विधा को पुनर्जीवित करने का काम किया है. इस समय भारत के 29 राज्यों में मल्लखंब की पंजीकृत एसोसिएशन हैं, लेकिन प्रदेश के अलावा अन्य किसी राज्य ने इस खेल को संरक्षण प्रदान नहीं किया है.

मल्लखंब खेल को स्थापित करने में उज्जैन का नाम खेल मानचित्र पर तेज़ी से उभरा है. मल्लखंब ने यहां के सात खिलाड़ियों को जहां प्रदेश शासन के विक्रम अवार्ड से नवाज़ा है वहीं अन्य को एकलव्य अवार्ड मिला है. एक खिलाड़ी आशीष मेहता को विक्रम अवार्ड और विश्वामित्र अवार्ड से अलंकृत किया जा चुका है. यह गौरव प्रदेश में केवल उज्जैन को ही प्राप्त है. इसे अब विदेशी खिलाड़ी इंडियन जिम्नास्टिक कहने लगे हैं. जापान का एक दल पिछले दिनों उज्जैन के मल्लखंब खिलाड़ियों का प्रदर्शन देखने आ चुका है. न्यास द्वारा आयोजित एक कार्यक्रम में प्रदेश के खेल मंत्री तुकोजीराव पवार तथा कैबिनेट मंत्री कैलाश विजयवर्गीय ने इन खिलाड़ियों को पुरस्कारों से भी नवाज़ा. राष्ट्रीय स्पर्धाओं से मल्लखंब खेल की तीन विधाओं का प्रदर्शन होता है. पहला स्थाई मल्लखंब, दूसरा हैगिंग मल्लखंब और तीसरा रोप मल्लखंब. ख़ास बात यह है कि पुरुष खिलाड़ी जहां तीनों विधाओं में प्रदर्शन करते हैं वहीं महिला खिलाड़ी केवल रोप मल्लखंब का प्रदर्शन करती हैं. लकड़ी के एक खंबे पर आठ से नौ फुट की ऊंचाई पर कला का प्रदर्शन अपने आप में अनूठा है.

मल्लखंब सागवान या कालिये की लकड़ी का बना होता है. यह ज़मीन में क़रीब 90 सेंटीमीटर तक गड़ा होता है. वहीं हवा में इसकी ऊंचाई 280 सेंटीमीटर तक की होती है. निचला सिरा मोटा और ऊपरी सिरा गोलाई में पतला होता जाता है. सबसे ऊपर का हिस्सा वृत्ताकार होता है. इसके ठीक नीचे का क़रीब 20 सेंटीमीटरका हिस्सा मल्लखंब की शेष मोटाई से पतला होता है और इसे इसकी गर्दन कहा जाता है.

पारस जैन

कैलाश विजयवर्गीय

अच्युतानंद स्वामी

तुकोजीराव पवार

इसी मल्लखंब पर खिलाड़ियों द्वारा योगासन, जिम्नास्टिक और एक्रोबेटिक व्यायामों का प्रदर्शन किया जाता है. भारतीय मल्लखंब महासंघ की तकनीकी समिति के मानक की बात की जाए तो साधकों को मल्लखंब पर केवल 90 सेकेंड में अपना सर्वश्रेष्ठ प्रदर्शन करना होता है. यानी चुस्ती, स्फूर्ति, एकाग्रता और चपलता का ऐसा खेल कोई दूसरा नहीं है.

यदि मल्लखंब का इतिहास देखा जाए तो बात द्वापर युग तक जाती है. श्रीकृष्ण के समय में भी इसके प्रमाण मिलें हैं. हैदराबाद के निजाम के यहां दो पहलवान अली और गुलाब थे जिन्होंने पूना जाकर वहां पेशवा के दरबार में बल प्रदर्शन किया था. पेशवा के आश्रय में रहने वाले बालभट्ट देवधर ने उनकी चुनौती स्वीकार की थी और देवी सप्तश्रृंगी का 21 दिन तक अनुष्ठान किया था. देवी ने प्रसन्न होकर साक्षात हनुमान जी ने दर्शन दिए और मार्गदर्शन दिया. हनुमानजी ने मल्लविद्या का प्रदर्शन किया, जिसे देवधर ने सीखा और उक्त दोनों पहलवानों को पराजित किया. वे ही मल्लखंब के प्रवर्तक बने. उन्हीं के शिष्य दामोदर गुरु मोघे जिन्हें पूरे देश में उज्जैन के अच्युतानंद स्वामी महाराज के नाम से जाना जाता है, ने मल्लखंब विधा को उज्जैन और पूरे प्रदेश में स्थापित किया. उन्हीं के नाम पर उज्जैन में व्यायामशाला है. उन्होंने 1896 में शिप्रा तट किनारे अखाड़े की स्थापना की जिसे गुरु का अखाड़ा कहते हैं. प्रदेश के राज्य मंत्री पारस जैन इस अखाड़े के शिष्य हैं और आज भी उजैन प्रवास के दौरान अखाड़े जाकर नियमित व्यायाम करते हैं. यहीं से सैकड़ों खिलाड़ी तैयार होकर निकलते रहे हैं. उज्जैन की ही शैक्षणिक संस्था लोकमान्य तिलक सांस्कृतिक न्यास द्वारा मल्लखंब विधा की नई तकनीक बोतल मल्लखंब का अविष्कार किया गया है. कांच की 28 बोतलों पर लकड़ी के छोटे तख्तों द्वारा खिलाड़ी मल्लखंब विधा का प्रदर्शन करते हैं. यहां पर यह कौशल न्यास के पदाधिकारी स्व. हरिभाऊ जोशी, ओमप्रकाश अग्रवाल और अशोक सोहनी द्वारा पोषित और संरक्षित है.

feedback@chauthiduniya.com